पहली स्थिति

अंतिम स्थिति

(कहानी संग्रह)

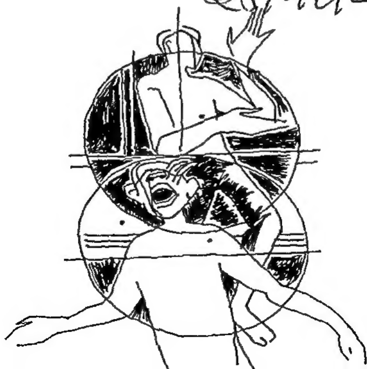


ज्ञान भारती

4/14 रूपनगर, दिल्ली 110007

पहली स्थिति अंतिम स्थिति

चन्द्रा औलक



उनकी याद को अर्पित
जिन्हें इस प्रयास से
सर्वाधिक प्रसन्नता होती

भूमिका

श्रीमती चन्द्रा औलक की कहानियों का संसार एक बिलकुल अलग संसार है। एक ऐसा संसार जो इसी संसार के बीच है । और वह दुनिया उस नारी की दुनिया है जो आज की है आज के भीतरी विघटन और सत्रास को लेकर जीती है—इसीलिए इनकी कहानियों में एक सहज आधुनिकता समा जाती है जो इस नारी की आधुनिकता है जो टूटते हुए भी खुद को बचा रही है—जो पूर्णत्व की आकांक्षा करते हुए भी लगातार अपूर्ण बनी रहने के लिए अभिशप्त है ।

इन कहानियों में घर है लेकिन मन के वे घरौंदे नहीं हैं जो घर को घर बनाते हैं । इन घरों मे फ्रिज है रसोई में गैस है, पर खाना जैसे फ्रिज में पकता है और गैस पर ठंडा होता है । तमाम भौतिक उपादानों के बीच एक चटखे हुए अंतर्मन के अंधेरे, टूटन और करुणा के प्रसग इन कहानियों में बिखरे पड़े है । और अंतर्मन के अंधेरों से मुक्ति पाने के लिए सबंधो के क्षणजीवी दीये भी इन कहानियों मे टिमटिमाते रहते है और पूर्णत्व के महासुख के लिए इन कहानियों के कुछ करुण क्षण अतीत मे लौट लौटकर इसमे निशान और सहारे खोजते रहते हैं— जैसे कि शायद अतीत ही दारुण वर्तमान का दुःख भी है और दारुण वर्तमान को जीते हुए अतीत में ही सुख के कुछ अवशेष बिखरे हुए है ।

इन घरों में खिड़कियां है उनसे रोशनी भी आती है और अंधेरा भी। इन कहानियों के पात्रों के मन के दरवाजों पर जैसे बरसों से डोर-बैल भी लगी हैं पर डोर बेल बजने पर घर का दरवाजा खुलता है मन का दरवाजा उसी तरह अपने पाट बंद किये बैठा रहता है ।

बाह्य संसार के साथ ही अंतस् के संसार की आवाजें भी सुनायी देती

है .. और सब पैर चलते भी हैं परंतु पहुंचते कहीं नहीं क्योंकि वे पैर मन की मजिल तक नहीं पहुचाते ।

श्रीमती चंद्रा औलक की कहानियों के महिला पात्र अश्रुविगलित अधीन और अनुसरणात्मक दुनिया से बाहर निकलकर आहत और अपराजेय व्यक्तियों के रूप में सामने आते है और अपने अस्तित्व के लिए, अपनी अधूरी भावनाओं के पूर्णत्व के लिए संघर्षरत रहते हैं--एक ऐसे आहत और कटे टूटे व्यक्ति के रूप में जो अपने घावों को सहलाता उन पर मरहम भी लगाता जाता है लेकिन उन्हीं घावों को तेज नश्तर से बार बार हरा भी करता जाता है ।

इन कहानियों के कथ्य और नारी की पूर्णत्व की तलाश को तारीखों के कैलेंडर पर पीछे नहीं लौटाया जा सकता--लगता है कि उसकी इसी टूटन अकेलेपन अंदर के अंधेरों और शीशे की तरह चटके हुए अस्तित्व में सास ले रहे तमाम प्रश्न और स्थितियां अपना उत्तर और संतुलन खोजेंगी--क्योंकि ये कहानिया परिवार समाज या संबंधों को फैशन के बौद्धिक अतिरेक में तोडती नहीं बल्कि अंतस् की पूर्णता के लिए उत्सर्ग करते हुए एक नये संतुलन की भूमिका की मांग करते हुए सामने आती है ।

और ऐसा कर सकना आसान काम नहीं था--सहजता से सहज सपूर्णता की मांग और उसकी भूमिका का निर्माण एक कठिन दायित्व है जिसे बहुत आसानी से श्रीमती चंद्रा औलक ने निभाया है।

24 10 88

--कमलेश्वर

आमुख

संघर्ष जो सिर पर तना खड़ा रहता है। और खड़ा खड़ा पीसकर सूखा भुस्सा बना देता है। व्यक्ति में ज्ञान बुद्धि सोच नहीं रहने देता कि व्यक्ति ठीक से सोच पाये।

आम आदमी को इस युग ने ठीक से कुछ दिया ही नहीं इसलिए पता भी नहीं पड़ता—क्या ठीक है क्या गलत।

कुछ ऐसी ही स्थितियां एवं पात्रों को लेकर कहा है इस संग्रह में।

यह कहना कैसा बन पड़ा है कितना स्पष्ट एवं अस्पष्ट रहा है यह पाठक पर है।

पर एक भयपूर्ण स्थिति जो आज सामने है उससे व्यक्ति ऊपर उठना चाहता है छुटकारा चाहता है।

छूटे या उठे न भी पर उठ सकने की मांग करता है। इसका अंत कहा है ? यही तलाश है।

—चंद्रा औलक

क्रम

सूखा

बेहद गर्मी मे आयी थी वह। गाडी सामने वाले बरगद के घेरे मे खडी करने को कहकर वह सीढ़िया चढ आयी। कॉलबेल देने पर दरवाजा नहीं खुला तो उकताहट सी हुई, पर बाहर धुधले आकाश मे उडती मिट्टी और हवा म हिलती शाखाओं म मन अटका रहा।

दूसरी बेल पर नाम पूछा गया। दरवाजा भी नाम बताने के बाद ही खोला गया। सामने नगे सिर, नगे पैर, बिखरे से बालो वाली कृशकाय-सी मा। ऐसे फटे चिथे हाल मे मा को देखकर जैसे एक गहरा धक्का लगा हो उसे। दहक आते खिसखिसाये-से भाव पर काबू रखते हुए, उसने हाथों म भरा सामान मा के फैले हाथो मे धर दिया। मा ने सब स्टूल पर धरकर फिर से स्वागती बाहे बेटी के लिए फैलायीं। फैली बाहों मे क्षण भर को सिमटी तो लगा कि एक हल्के से सतोष मे अभी अभी उठी दहक कहीं विलीन हो गयी है।

"अकेली होती हू, तो पूछकर ही खोलती हू। झेप मिटाने जैसा एक भाव मा के होंठों के आस-पास तक फैल गया, जिसे अलक्ष्य करते हुए उसने पूछा, "क्यों, राजी घर मे नहीं है ?

'बच्चों के स्कूल गयी है राजी कहती मा सामान कमरे की ओर ले गयी।

"ये दूध मैं फ्रिज मे रख रही हू, जाते हुए कहीं भूल न जाऊ ? कहते हुए वह मा के पीछे-पीछे कमरे की ओर गयी।

'दूध ? हा, दूध की गडबड चल रही है ?

"और रौनी को फटा हुआ दूध देना पड रहा है।

'फटा हुआ ? मा के चेहरे पर चिंता की झाईं-सी ठहर गयी। यह फिर क्या हुआ रौनी को ? पर मा के पूछने से पहले ही उसने बताया, "ऐसे ही पेट की गडबडी है कहते हुए कमरे मे झाकी तो मा दोबारा झेपी, पुराने पोथी-पत्रा दूर सरकाते हुए बोली, 'तुम्हारे पापा की याद आती है, तो सब निकाल लेती हू।

बेटी ने उधर ध्यान नहीं दिया तो पूछा, "इस कमरे मे बैठोगी ?

लड़की के न बैठने पर मा को प्रतीत हुआ कि ऐसे छितरायेपन ने लड़की को विचलित किया है। मा बेटी दोनों क्षण भर एक-दूसरे को निहारकर डाइनिंग रूम मे आयीं, तो मा ने पूछा, 'कुछ पिओगी ? और पानी के लिए फ्रिज खोला।

'नहीं, मैं चाय पीऊगी। उसने निश्चित स्वर म कहा, और रसोई मे जाकर पूछा, भगौना कहा है ?

'उस ताख मे ठहरो देती हू। तत्पर होती-सी मा आयी, तब तक भगौना ढूढकर चाय का पानी धर चुकी थी वह।

चाय की प्यालिया लगाते समय लड़की की निगाह कोने मे पड़े अटैची पर पडी, तो पूछा, 'ये सामान किसका है ?

'राजी की बहन आयी है फरीदाबाद स मा ने बताया, 'इन दिनों वो नहीं हैं न, तो मिलने वाले आते हैं। अपने रहते मिलने जो नहीं देता ?"

चाय की खटपट म उसका ध्यान उधर गया नहीं था। बाद मे सुना तो सहसा उफन पड़ी, बोली, "मुझे नहीं सुनना ये सब, न मैं सुनने आयी हू, कि कौन किसको मिलने नहीं देता।" अपने फट गुब्बार को समेटती सी वह ड्राइवर को चाय देने चली गयी। लौटकर अपनी प्याली उठायी और कमरे मे आ गयी। मा उस समय बचे-खुचे सामान को ट्रक के हवाले करती पूर्ववत् चारपाई के कोने मे सिमट गयीं। बिना मा की ओर देखे ही उसे ज्ञात हुआ कि मा की आखे पापा की तस्वीर को निहार रही हैं। पापा की तस्वीर पर उसकी दृष्टि भी उठी, फिर बिस्तर के कोने मे सिकुड़ी मा पर, और तब कमरे मे अन्य चीजों पर। कमरे की चीजों की लय के साथ-साथ एक अदृश्य दिलासे जैसा आरोपित भाव मा की आकृति पर है, जिसे ओढे मा मानो स्वय को सहला रही हैं।

इस खास तरह की अवशता को पता नहीं क्यों वह स्वाभाविक रूप मे नहीं ले सकती। ये अवशता उसे गढ रही है, ऐसा भाव उसने जाहिर नहीं होने दिया। चाय सिप करते हुए उसने खिड़की का पर्दा खींच दिया। खिड़की के टूटे हुए शीशे पर धूप-छाव-भरी रोशनी झिलमिलाने लगी, आप रोशनदान वाली खिड़की का पर्दा भी हटा दिया करो।" उसने मा की ओर दृष्टि फेर ली।

'पर रोशनदान से कबूतर और गिलहरिया आ जाती हैं।"

वह खिड़की से बाहर देखने लगी जहा मेहराबतले सचमुच कबूतर और कबूतरी एक-दूसरे की गरदन पर सिर टिकाये चुप बैठे थे। नीचे थीं बँटे-ही बँटे। बगीचे वो

दीवार पर यदा कदा सिर उठाती गिलहरियां थीं, जिनकी आखों मे अजीब-सी सतर्कता का भाव ठहरा है। विस्मय से भरकर उसने आखे फेर लीं।

मा ने याद दिलाया, "चाय ठडी हो रही है।"

फिर से चाय पीने लगी, तो मा एक किताब उठा लायीं, "परसों यहीं छूट गयी थी तुमसे '

"अरे । उसने किताब उठाते हुए कहा, और मैं सोचू कि कहा छोड आयी हू!"

किताब झोले मे धरते समय पाया — मा उसकी लायी हुई चीजे गौर से देख रही हैं। फिर उन्हे यथास्थान रखते हुए कहा, "इतना क्यों खर्च करती हो ?

उसे मा का भीगा सा उलाहना मीठी पुलक से भरता रहा था, तभी मा बोली, "इतना कहा खा पाऊगी मैं ?

'हो जायेगा खर्च, एक-एक करके।"

'पर ये घी का डिब्बा और बिस्किट ?'

'एक-एक चम्मच कभी डाल लिया करो — दाल सब्जी मे '

दोनों कुछ देर ऐसे ही बैठी रहीं, फिर थोडी झिझक के साथ मा बोलीं, 'मना कर रखा है डॉक्टर ने जो ?

कुछ उत्साहित होते से कहा, "थोडे स कुछ नहीं होता, फिर नासपाती का कहा था — उस दिन ।

"हा, वो मैं जरूर खाऊगी।

मा का भीगा उत्साह अच्छा लगा। कहा, 'ये भी खा लेना।'

मा कुछ सोच म पड गयीं कि नहीं खाया गया तो बेटी के काम से भी जायेगा। पर पूरी बात कही नहीं गयी। वैसे कहना चाहती हैं वे, पर यह डर बना रहता है कि बात मीना को भायेगी कि नहीं, कि बात का कौन-सा सिरा उसे ग्रहणीय होगा, या नहीं भी होगा। मा ने सिर उठाया तो उस किसी पत्रिका के पन्ने लौटाते पाया। फिर उकताकर जैसे पत्रिका वापस धरनी चाही।

"बडी उलझाव भरी है।" — लडकी ने सिर झटका।

उसकी ऊबन मिटाने को अथवा सन्नाटा भग करने को ही मा ने एक सार्थक सवाल पूछ लिया, "अपने पापा के श्राद्ध मे आओगी तुम ?

"श्राद्ध म ?" मीना मा के सामने ही आन बैठी। "उन दिन राजी से बात हुई थी,

मैंने उसे बताया था कि उन दिनों गुडहम के इम्तिहान चल रहे होंगे।

बाते मानो फिर चुक गयी हों, और कमरे मे रह गयी हों मा बेटी की बआवाज सासे। अचानक मा के चेहरे पर विस्मय उभर आया। कहा, 'कल एकदम मन मे मिलने का खयाल आया तो क्लिनिक से सीधी बस पकड ली, पर बाद मे याद आया कि तुम आजकल घर पर नहीं रहती हो। तब अगले स्टाप पर उतर गयी।'

अच्छा किया, आये नहीं। आजकल घर क्या — किसी जगह भी टिके रहना होता नहीं। कभी यहा, कभी वहा

'हा, मा ने जैसे खुद से कहा हो, अब कितनी व्यस्त हो गयी है मीना — व्यस्त और जिम्मेदार। जो पहले कभी नहीं थी। और बचपन मे तो सिर्फ अपने म ही रत ! सबस अलग-थलग ! — अब देखो, वो हाल मेरा है। मा बोलीं, अब मुझे तो अच्छा ही नहीं लगता यहा पर कहा जाये ?

'क्यों ? पहले आप घूमने जाती थीं ?

'शुरू-शुरू म बस दो कदम और फिर वापस हा, तुम्हारे पापा थे — तब

बेटी ने बात काट दी, 'घूमना चाहिए उससे ध्यान बटता है।"

"वैसे तो दूर दूर जाने का मन होता है, पर

मा कहते-कहते रुकीं, जैसे फिर ऐसा कुछ कह दिया है, जिसम कुछ तथ्य नहीं — बस, सन्नाटा भग करने के लिए बाते। और अब तो सन्नाटा झेलने की अभ्यस्त हो गयी हैं वे। कितने कितने दिन हो जाते हैं, किसी से बोले !

'पहले तो आप मडल मे जाते थे

'वो — रामा कृष्णा मिशन ? पर इन दिनों सूखे की वजह से मडल के लोग चन्दा उगाहने मे जुटे हैं।

'ये तो अच्छा है। ऐसे कामों मे जाना चाहिए।

पर वह नहीं जातीं। लोगों मे वैसी भावनाए हैं कहा ? मा ने सोचा और देखा, बेटी बाहर देख रही है, जहा दो एक गिलहरिया एलेस्टोनिया के पत्ते कुतरती रह-रहकर इधर उधर देख लेती हैं।

लडकी ने बाहर से ध्यान हटाकर भीतर देखा तो मा ने कहा, 'सोचती हू, अब जो तुम आयी हो, तो तुम्हारे साथ ही उतर जाऊगी — दवा की दुकान तक ही सही

लडकी एकाएक उछलकर खडी हो गयी, अब मैं यहा एक पल भी नहीं

रुकूंगी।

मा हक्का बक्का देखती रहीं कि लड्की किस बात का बुरा मानकर बमक पडी है ! शायद उसे अच्छा नहीं लगा — मा मे घूमने की लालसा होना ?

'मै भी पागल हू लड्की नमतमार्नी बाली, 'कैसे सोच लिया था कि कुछ देर रहूगी। बातचीत होगी। पर ऐसा होता नहीं। आओ, और बात क्या से क्या हो जाती है। वह गुस्से से भर गयी और अपने गुस्से से खुद ही आतकित होती सी अपने आने पर पछ्ता रही थी कि अच्छा भली बैठी थी — अचानक बिजली गयी, और रौनी ने कहा — यहा गर्मी म बेकार घुटोगा — जाओ, मा से मिल आओ। और दखो कि वह मान गयी। कड्क्ती गर्मी मे कहा भागी गयी — ये सब लेने ? बेकार कितना डाल आयी ? कुछ जरूरत थी ? पता नहीं, क्या हो गया था उसे ? — जानती नहीं थी, इससे अलग यहा होना क्या है ?

हतबुद्धि-सी मा पूछ आयीं, 'पर हुआ क्या है ?

मा के खिन्न हो जाने से वह उल्टा विरक्त ही हुई है। क्या मा को जरा भी आभास नहीं हुआ, अपने उपेक्षणीय-से स्वीकार का ? तब मा को भी ध्यान हुआ बेटी के मर्माहत होने का। — पर उन्होंने यही तो कहा था, कि बेटी का पैसा बेकार होने देने से तो अच्छा है, ये पैसा बेटी के उपयोग मे ही आये। — मा बेटी दोनों ही तब तथ्यो तथा एक-दूसरे की सवेदनाओं के जानकार होते हुए भी एक-दूसरे के अहसास की माग को गैर जरूरी ठहराते हुए, अपनी अपनी अपेक्षाओं की प्रतीक्षा लिये बैठी रहीं।

अतीव अवहेलना प्रकट करते हुए लड्की बोली कि हमेशा सोचती है, मा के यहा उसे जाना चाहिए, पर यहा आने पर हमेशा पछ्ताना ही पड्ता है। तब प्रण लेती है — नहीं आयेगी अब। फिर पता नही कैसे फस जाती है — ऐसी जगह, जहा सिवा अपने दूसरे का खयाल हैई नहीं।

हालाकि तब लड्की को लगा भी था कि वह खुद कितनी अलग तरह की है — कि उसका सबध विभिन्न विषयों से है, जबकि मा मीना नहीं है, पर इनके लिए कोई क्या करे जो दूसरो को समझने की कोशिश ही नहीं करतीं ? — चलो, माना कि रोगग्रस्त हैं। खा पी नही सकतीं, पर भावना की खातिर भी उपहार रख नहीं सकतीं ? — वह फिर कड्वाहट से भर गयी, आप खा भी सकती हैं ? कोई कसम है कि कभी खायेंगी नहीं ? — खाया नहीं पहले ? "

'पहले ? पर अब भयभीत होते से कहा था मा ने।

तब उतने ही निर्भीक स्वर म उसने उत्तर िया कि "चलो — देखेंगे, आगे भी "

आग ? मा पानी पानी हो गयीं।

अपने कटु स्वर को आप ही मन म सयन करते उसने मन को उत्तर िया कि क्यों न कहे वह ये ? क्या ानती नहीं कि जान बूझकर इनकार किया है, कि — बेटी ऊची उठ गयी है ? — कि य मा का अधिकार नहीं है लेना ? और जब छोटी-छोटी मांगे ये खुद उठाती हैं ? ये झोला है, इन्हे चाहिए — ये पोथी — ये भजन — वा कलम !

अवज्ञा जैसे भाव म उसन मन ही मन म कहा, 'क्यों कोई दे य सब ? — आप खुद नहीं खरी सकतीं ? अपन लिए ? पूछो, तब एक जवाब सुन लो — निकली ही कब हैं ? कुछ करने लायक नहीं रहीं ?

सहसा मा ने सोचा — सच तो है कि अपने लिए वह कुछ क्यों नहीं करतीं ?

तब लड़की भीतर डूबी रही। करने लायक क्या पापा थे ? पर किसी का कभी अहसान नहीं लिया उन्होंने ? और कुछ अगर किसी ने पीछे पड़कर िया ही है, तो मन से न चाहते हुए भी स्वीकार लिया है। मान रखने के लिए। कभी कोई झंझट उठने नहीं दी। — साचने के बा काफी खिन्न हो आयी थी वह और उसी खिन्नता मे होंठ हिल आये थे, *भावहीनता का एक ये — इनका उ्हरण है, और दूसरी तरह से एक्स्ट्रीमेस्ट थ पापा* कि किसी बच्चे ने कोई जिद की है कभी, ता उन्होंने किसी को मायूस नहीं किया। अगर एक बेटे बटी के यहा स पेट भर के भी चले हैं, और दूसरे ने कुछ आगे रख िया है, तो पहले वाले क यहा का राज दूसरे पर खोले बिना वे उसके साथ भी बैठ जायेगे। भूल जायेगे अपना पट भरा होने की बात। बिना किसी हील-हुज्जत साथ देना, इस तरह धीमे धीम खुशी बा देते थे सबम वे

पापा की ऐसी या ों के बीच उसकी आख गीली हो आयी थीं। उस क्षण मा बेटी दोनों की नम आख अपने अपने ढग से मानो उस स्वर्गवासी की तस्वीर व आत्मा को छूती रहीं।

मा मानो भीतर ही कुछ कह पडी, 'देखो, बेटी का मनोवेग। यदि धीरे धीरे हरकत मे आता, तो समझ म आ सकता था, पर वज्रपात की तरह यदि अचानक पूनो को कोई अमावस मे बदल डाले ? बालो — ऐसा सैलाब थामा जा भी सकता है ? फिर शाय बेटी ने कहा—'सोचा था, स्थितियों से समझौता करना सीख लिया होगा इन्होंने। ये लोग तो यहा शही होने मे ही आनदित हो रहे हैं। समझ मे आने वाली बात है कोई ? फिर से मुखर हो आयी, 'ह है ! अभी परसों मैंने कहा कि लाओ, मैं ही दवा ला देती हूं तो मना कर िया,

कहकर कि बाजार बद है। हालाकि दवा की दुकाने खुली रहती हैं छुट्टी के दिन भी, पर दवा अब तक नहीं आयी। अब मेरे साथ चलकर ये दवा लेमी। कोई चाहिए इन्हे ?

वह जैसे कहे गये को बार बार दोहराते थक गयी हो, और उसमें शब्दों की थकान या ऐसे दकियानूसीपन से उत्पन्न वितृष्णा, या फिर उदासीनता ही भर गयी हो, कि जिसके सबब होंठ फड़फड़ा आये हों — 'पता नहीं, कौन-सी सदी मे रह रहे हैं! इन्हे पता ही नहीं बाहर लोगों पर क्या क्या कहर बरस रहा है ?

यह विदेश और देश मे विपत्ति जनित हादसों क घटित होने के ब्यौरों के दौरान रौनी के सर्जन के जवान बेटे की मृत्यु का प्रसग सुनाने के उपरात बोली — और इतने पर भी देखो, मरने वाले के बाप का हौसला कि उसने अपनी ड्यूटी मे कोई व्यवधान तक आने नहीं दिया। यहा तक कि कभी कोई मातहत — दो चार मिनट की भी कोताही बरते — और एक ऑपरेशन के बाद दूसरे ऑपरेशन की तैयारी म जरा सी भी ढील आ जाये, तो वह इसे सहेगा नहीं। ऐसे मौकों पर यही कहा है डॉक्टर ने, कि — ये दो चार उपचार के क्षण जो व्यर्थ कर दिये गये हैं, ये हमारे नहीं, ये क्षण मरीज के थे, जो इससे लाभ उठा सकता था। — तिस पर सराहना की बात यह कि डॉक्टर ने कभी अपने मुह से यह बात बाहर नहीं निकाली कि उसका जवान बेटा मर गया है। न ही कभी इसका आभास होने दिया है किसी को। — पर पता नहीं — ये, घर या बाहर कभी बात पड जाय तो क्या कहती होंगी ?

शायद उसे अपनी छवि का खयाल हो आया था कि मा की बातों के दायरों मे उसका परिचय कितना सकुचित हो उठता होगा ? ऐसे मौकों पर मा खुद कैसी बेहूदा दिखायी देती होंगी ? उसकी दृष्टि फिर पापा की तस्वीर पर उठी।

और देखो कि पापा कैसे इस किस्म के बेहूदापन से दूर रहे थे ? अपना परिचय कभी चितारा ही नहीं था। सब कुछ स्वाहा हो जाने पर भी उफ नहीं की। फैक्टरी के जल जाने का एक लफ्ज मुह पर नहीं लाये। — तब एक छदाम भी पल्ले नहीं था कि किसी दूसरे छोटे मोटे छप्पर तले ही कोई जुगाड जमा लेते। बस, एक अद्द जूते लायक चमडे की खरीद करते — और यों एक जूता बनवाकर बेचने, तब कहीं घर मे चूल्हा जलता। इसके माने यह तो नहीं कि पापा मे ज्यादा की आकाक्षा नहीं थी ? पर भूलकर भी कभी ठडी नि श्वास नहीं भरी उन्होंने।

पापा की याद ने तब उन दिनो वाली मा का चेहरा भी याद दिला दिया। तब वो सुन्दर काया वाली मा कितना कुछ दरगुजर कर लेती थीं। छोटी-बडी दोनों बहन समान

की उठती उगलिया या कथोपकथन कभी सहारती नहीं थीं। मामा मामी के यहा रहने पर जो सुनना पड़ता, इसकी भी आदी नहीं थीं। तब मा ही समझातीं कि आज सहने-सुनने का वक्त है हमारा। सारे रिश्ते तब तक के होते हैं, जब तक औकात हो। फिर हमारे सिर पर मीना और लीना की पढ़ाई की जिम्मेदारी है। मा ने उन दिनों तब दो दो, चार चार मीटर कपड़ा नापकर बेचने मे भी हेठी नहीं मानी। न ऐसी कोई गैरत ही पाली कि कोई समझे, कौन किससे कितना फर्क है? — अपने बच्चों पर हीनता की छाप नहीं पड़ने दी। सोचने पर तब उसे महसूस हुआ था कि वह व्यर्थ ही मा के प्रति क्रूर और अशिष्ट हो आयी थी, पर कुछ देर मौन रहने के उपरात उसमे नया मलाल उभर आया कि पापा मौजूद थे, तब तक ही मा म स्थिरता थी, पर पापा के आख मूदते ही वे कैसी हो गयीं?

पापा और मा के बीच का अतर उस नये सिरे से सताने लगा था, कि पापा जैसा धीरज भी मा मे नहीं था—पापा के बाद ही मा ने चारपाई ले ली थी। फिर जरा सी बीमारी में घबड़ाकर अपनी वसीयत तक लिख डाली थी और इस तरह सब पर प्रकट हो गया कि पापा की पूजी का सरक्षक रौनी है। — छि, कैसा सशयाकुल मन! पापा मरते मर जाते, पर अपने मुह से सरक्षक का नाम बाहर न निकालते, कि सुनकर चारों भाई-बहन अवाक् रह जाते। और देखा कि कितने मनोयोगपूर्वक सुना उन सबने! और लीना ने तो सरआम कान ही खड़े कर लिये। — बहुत लाडली मानती है खुद को। पर निरर्थक लिप्सा मे फसी! सिर से पैर तक सासारिकता मे रत! सोचते ही नये सिरे से झुझला आयी वह, 'फिर उसे देखो, जैसे कोई काम नहीं उसको। पैसा है, बच्चे पढ रहे है, पर काम की जगह हाय-हाय सुन लो

मा को ध्यान नहीं पड़ा कि मीना किसको सबोधित कर रही है। पूछा, तो बोली, और किसे कहूगी, लीना ही है। हमेशा कायकाय सुन लो उसकी। आगे कोई कम तक्लीफे हैं हमे, कि सुनो इनकी। वो भी, कि जब दूर दूर तक तकलीफ हो न कहीं भी'

सहसा रौनी की तकलीफ का खयाल आया मा को। तब चाहा — पूछ, कैसा है रौनी? पर देख आयी है मा कि रात भर पीड़ा कटकती है उसे, पर सहार है उसम ?

कभी मा ने उसके सहार की सराहना की थी, और मीना ने कहा था—आपक सामने चुप रहता है नहीं तो देखा करो कैसे बच्चों जैसा चिल्लाता है

अच्छा इन दिनों फैक्टरी का काम कौन देखता है?

सहसा मा ने पूछा तो बोली 'कौन देखेगा? खुद ही देखता है।

'फैक्टरी का एक विंग समेटना था उसने ?

'हा, पर सब कुछ सही हाल म हो, तब न ? कभी अचानक पता चलता है, मशीन ठीक नहा। मशीन ठाक हुई, तो बिजली गायब ! बिजली आती है, तब वर्कर नहीं होते ! — हों भी ता, पहले मांगे सुनो उनकी। महगाई बढेगी तो मागे साथ बढेगी

एक बार एसी झझटो के दरमियान मा न लडकी के पापा की उपस्थिति का चितारा था — 'वे होते तो '

'झझट किमी क होने स गयी हैं ? — और

कोई-न कोई झझट ता रहगी ही, फिर कोई ठेका था जन्म भर का ?

पापा जब नहीं रह तब रोज यहा आती थी वह। गुड्डम को कहती, वह मा को घुमाने ले जाय। खुद वह घर मे रहती। दर तक अकेली इन कमरों मे घूमती। छज्जे पर जहा पापा खडे रहते थ वहा से नीचे दखती। पहले सुबह-सुबह पापा उधर से आते दिख जात थ। आज भी कोई दूध लेकर उधर से आता तो उसे पापा के होने का भ्रम होता। पर वे पापा नही होत, और वह हट आती। आकर घर झाडती बुहारती और वे तमाम काम करती जिन्हे पापा निबाहते थ। फिर वह अपना शादीवाला फोटो एलबम उठा लेती। पापा जब उसके घर आते थ, यही दखा हुआ फोटो एलबम देखने लगते थ। कभी वे गुड्डम की ड्राइग बुक निकाल लत, और राइटिंग टेबल पर बैठकर किताब मे रग भरते रहते। कभी किताब के हाशिये मे कोई नया डिजाइन बना देते। गुड्डम स्कूल से लौटती तो उसे दिखाकर सहसा चकित कर देत।

इतवार की छुट्टी वे गुड्डम के साथ बिताते — ताश के खेल खेलते हुए। किसी अन्य छुट्टी के दिन उसे और गुड्डम को लिय हुए वे शॉपिंग मे ही साथ देते।

मीना की दी खरीद की फेहरिस्त उनकी जेब मे होती। फिर भी मुहजबानी सब याद होता उन्हे। और वे शॉपिंग विंडो पर ठिठक जाते, फिर उसकी ओर देखते। वह आगे बढ जाती तो वे भी नहीं रुकते। ऐसा प्राय नयी दिल्ली के इम्पोरियम की दुकानों पर होता। उन दुकानों पर खरीद की चीजों को लेकर उसम और पापा मे एक खेल-सा चलता। गुड्डम भी उसका अनुसरण करती। पापा के साथ भागम भाग मे गुड्डम को एक खास तरह की खुशी हाती।

शॉपिंग के बाद भी पापा को एक-एक चीज की याद होती कि इसे कहा से खरीदा था। कोई पुरानी चीज भी दिखायी दे जाये, तो कहते — बब्बे ! (बब्बे कहकर पुकारते थे) ये हमने साथ नहीं खरीदी थी ?

बाद मे — पता नहीं, कैसी झपटे सी आ गयी थीं — कि वैसा रसभरा प्रदर्शन कहीं छूट ही गया। वे मुस्कराहटे भी हवा हो गयीं। परिस्थितियों की प्रतिकूलता के आगे डटे रहकर उसने क्रूरता को जान लिया था।

उन दिनों पापा रौनी की नयी इमारत की नींव रखवा चुके थे। इमारत का उठना और निगरानी दोनों पापा के जिम्मे थी। बिल्डिंग बनने के दौरान यदि किसी बात पर कोई कहा सुनी हुई है, तो उसके सख्त सुस्त पर पापा ने कोई सख्ती नहीं बरती। न ही अपने लिए यह कामना सजोई कि कोई उनके लिए कुछ तरद्दुद करे।

सब याद आने पर यह पापा और मा मे तुलनात्मक भेद किये बिना नहीं रहती कि मा ढुलमुल है।दूसरों पर निर्भर! कोई कघी ले आया, बाल सवार दिये, तो ठीक, नहीं बिखरे तो हैं ही। चप्पल किसी ने ला दी, तो ठीक, नहीं तो चट्टिया ही चटखाती फिरेगी। यही हाल खाने-पीने का है। — ये कच्चा है, यह पक्का — ये हल्का, यह भारी। सिला अधसिला यह जैसे खुद किसी लिजलिजेपन से भरी सिहर सी आयी हो — ओफ।

ऐसी अभद्रता ने तब मा को मानो अपलक उधर देखने पर विवश किया है, कि लड़की को हुआ क्या है? — लेकिन इससे लड़की की कड़वाहट मे कोई अतर नहीं आया। उसने समझाना चाहा कि 'जरूरी नहीं कि बात सिले-धुले की हो, असल चीज है नुक्स निकालना, कि बेकार जैसे काम ही क्यों किये जाय?

उसकी भौंहे खिंच गयीं — 'भाभी जी हमारे यहा यही करती हैं। नौकरों तक मे नुक्स निकालना — ये ऐसा है, वो वैसा! बस, मैं अपना काम खुद ही करती हू। भई, खुद काम करना बढिया है, पर दूसरों मे नुक्स निकालकर क्यों? आपको नौकरों की जरूरत नहीं, पर नौकर चाकरों वाले घर मे औरों को तो नौकरों से काम है। — पर ये कमाऊ और लायक बेटों की मा हैं, तो इस बात का गर्व तो करेगी ही मेरा मतलब है — लोग अच्छी बात क्यों नहीं सोचते? — यही बात आपमे है'

मा जानती है, यह एक सादा सा सवाल है, पर इस सवाल का जवाब क्या उतना आसान है? और कि किसी की किसी से तुलना की जा सकती है?

मुदी आखों और ढीले शरीर का भार तकिये पर डाल देते मा कह पड़ी —'बस, वक्त-वक्त की बात होती है।

"वक्त निबाह ही रहे हैं — हम भी! — रात-रात भर उलटी-थूक-खखार उबकाई — सब सभालते हैं।

लड़की के रजीले स्वर से ही मा को अपना सब याद आ गया। बडे घर की,

अनगिनत कमरों वाली हवेली की जिम्मेदारी। तिस पर ऊची नाक वाली सास। वे सब समस्याए क्या आज लोगों के आगे हैं भी ? पर, उस जैसों को लिपटा रहना पड़ता था उस सबसे — जीवन की परिपूर्णता के लिए। आज उन बधनों मे बधे रहने देना 'वाला ही नहीं, तो ,कितना कुछ सिर से गुजर गया है

लड़की, तब खुद को जैसे धृष्टता से अलग खींचते हुए कसमसाई — 'पर, पता नहीं कैसी फ्रस्ट्रेशन भर दी है — सबमे ?

काश, लड़की जानती कि वास्तविकता भाति-भाति की जटिलताए लिये होती है। — पर पता चले साफ ? या झुझलाहट के पीछे मुद्दा ही हो कुछ, कि अशिक्षा तो है नहीं मुद्दा ?

लड़की भी ठीक यही सोच रही थी, आखिर कुछ अधूरा तो छूटा नहीं। शिक्षा के अतिरिक्त भी जहा आज वह है, वहा रहकर जीवन दृष्टि व्याप्त ही हुई है उसकी। फिर ?

हौले से दोनों आखों के गिर्द — दोनों हाथों की उगलियों से — कोरों को पोंछते हुए उसने जैसे खुद को समझाने का प्रयास किया हो — 'वैसे मुझे कुछ शिकायत नहीं, तब खुद इद होकर भी क्यों मा के कमजोर कधों को उसने झझोड़ा था ? — शायद मा मे शक्ति स्फूर्ति चाही थी उसने। मा को रसोई मे देखा है, कभी पकवानों म रुचि लेते भी। तब उस उम्र मे आखों मे स्वप्निल-सी उमग थी, लीना उससे पहले ही ससुराल चली गयी थी। पीछे अब घर मे वही थी। सिलाई-बुनाई उसी के लिए। रसोई मे बनने वाले पक्वान भी उसी के लिए। ससुराल पहुच जाने पर भी प्राय पापा मिलने आते। कभी कभार जब मा आ जातीं— तो अनायास रसोई मे धीमी-सी हलचल मच जाती। परिवार मे जबसे गुड्डम ने जन्म लिया, घर मे सिलाई-बुनाई की धूम। गुड्डम मा के साथ रहकर खिली रहती थी।

अब वह मा कहीं नहीं। खिसियानी-सी सूरत और तकिये का सहारा लिय ढीली ढाली सी मा पर वह काफी खीज-खीज आयी है, कि, अभी आप पापा जैसे बूढ़े तो नहीं ही हो ? पर पापा ने खुद को कभी बूढ़ा नहीं माना था। दयनीय और मोहताज भी नहीं।

बाद मे जब पापा अस्वस्थ थ, तब भी किसी ने उन्हे अस्वस्थ नहीं माना। वे खु" अपने को भी कभी अस्वस्थ नहीं लगे। मा को हटा देते थे — 'तुमसे अब होता नहीं। हो भी, तो असहाय-सी दीखती हो। हटो '

उन्हीं पापा का असहाय होना तब याद आया। उन दिनों पापा को कानों से कम

सुनने लगा था। फोन पर भी बात ठीक समझ नही पाते थे। उसे ऊचा बोलना पडता और झुझलाकर वह रिसीवर धर देती। कभी फोन पर छटपटाती सी आवाज म पापा कहते — 'हा, हा! समझ गया — मुझे याद रहेगा।

वस्तुत उनकी याद पर आघात हुआ था। वे पास होने पर भी कहते — 'मुझे सब याद है। पर — जब तक तुम तैयार होओ, मैं सो लू — जरा देर?' पर सोने म भी अब वे ज्यादा वक्त लेने लगे थ। अचानक जब उठ आते तो घडी म वक्त देखत — जो निर्धारित समय के बाद का ही होता। तब उनके चेहरे की नसे आपस म गुथ जाती, एक सर्द-सी 'ओफ!' के साथ ही उनकी गुडी मुडी नसो पर तब अनचाही-सा करुणा भी बिखर जाती। दयनीय-सा कोई भाव वहा घर कर लेता, और वह विस्फारित नेत्रो से ताकते, मानो पूछ रहे होत — अब?

अब फिर सही कभी — ' पर, हुआ क्या है आपको पापा?' पूछ जाने पर तब उनके चेहरे का भाव ढल सा जाता।

'अब मुझे याद भी नहीं रहता — बच्चे!' — वे अवाक देखने लगते। और उनका मुड जाने को उद्यत हुआ [illegible] सा कदम जहा का तहा गडा रहता।

'पर पापा?' वह कहती — 'सुनते वक्त ध्यान [illegible] द लिया करो।

'ध्यान देता हू' पापा पूरा ध्यान उसके चेहरे पर अटकाये-अटकाये अपनी कमी स्वीकार करने जैसा भाव चेहरे पर उतार लाते, कहते — 'पर — मैं तो खुद कहता हू बच्चे — मै याद रखना चाहता हू, पर याद से उतर जाता है।

बेचारगी तथा खिसियानपन जैसा भाव उनके मुह स झडता रहता है, जिसे देखकर उदास सी होती वह मुह दूसरे कामो की ओर फेर लेती है।

अतिम बार भी जहा उन दानों को साथ जाना था वे जा नहीं सके थ। सोकर उठे तो कहा — 'पता नहीं ये दर्द जा क्यों नही रहा?

फिर जैसे उस दर्द वाली बात स शर्मिन्दा से हो उठे हो, मानो कितने अवसरों पर हुई किसी एसी ही चूक की याद ने उन्ह पानी पानी सा कर दिया हो!

कैसे थ पापा? और उनम छिपा वह उत्कट इच्छा कि दूसरों के हो काम आये? — पापा की याद मे बरबस आखे भर आयी।

अतिम बार जब पापा से मिलने आयी, तब भी नहीं बताया उन्होंने कि थोडी देर पहले बडी दी से इसी दर्द के सन्दर्भ मे ही जान-पूछ रहे थे वे बल्कि उससे यही पूछा — अचानक कैसे बच्चे?

'यों ही — बस !' उनके कौतूहल को बिटर बिटर ताकते उसने पैनकर हिल पूछा, तो बोले — 'बस, दर्द है। तुम्हारी बहन कहती है — स्पोंडेलाइटस होगा !' कहने भर से मानो निश्चिन्त-से हो गये हों वे ।

'डॉक्टर से क्यों नहीं दिखवाते ? उसने सुझाया।

'बस, अब दिखवाऊगा। तुम्हारी मा गयी है डॉक्टर का दिन जानने ' फिर कुछ रुककर कहा, 'अपनी बताओ, सब ठीक है ? कुछ जरूरत हो मेरी ?

उसने सिर हिला दिया, पर जैसे विश्वास न हुआ हो उन्हे, कहा — 'मैं चल सकता हू यह मत समझना कि घर मे 'वो' नहीं है तो मैं उसे बाद मे बता दूगा। और याद रखो, तुम्हारे साथ जाना तुम्हारी मा को गवा नहीं कभी ! अच्छा ही लगा है।

हठात उसने खुद को नियंत्रित किया। मा बेटी दोनों की नजरे एक-दूसरे से गुजरती अदृश्य पर टिक गयी हैं।

क्षण-क्षण को जीतने का विश्वास सजोया है लड़की ने। मा दूर तक सोच गयी, कि बेटी आगत प्रकाश-अप्रकाश, सभाव्य-असभाव्य देख सकती है। मा को श्रेष्ठरूपा अपने जैसा ही चाहती है बेटी।

मा भी कहे कि 'कुछ जरूरत हो मेरी तुम्हे ?' पर नहीं, वे पापा नहीं बन सकतीं। बेटी कह देगी कि 'आप तो लायबिलटी हो।' — सच, आज बेटी का टिफिनबॉक्स लगाने वाली मा क्या वे हैं भी ?

लड़की भी टिफिनबॉक्स के दायित्व का सोच रही है। आज मा वाला दायित्व मीना के पास है। थककर चूर होने पर भी यह दायित्व निभाना अच्छा लगता है। जिस दिन गुड्डम अपना टिफिनबॉक्स घर भूल जाये, या कभी रौनी की फैक्टरी म छुट्टी होने पर ही, वे दोनों गुड्डम को लच फाइवस्टार होटल मे करवाने जाये तो पापा का 'लच बॉक्स' लिए-लिए स्कूल आना याद आ जाता है।

गुड्डम के स्कूल पहुचने की भागम-भाग मे तैयार होते हुए खुद को जब भी कभी शीशे मे निहारा है, तो इस विषय को लेकर भीतर तक पेनीट्रेट करने पर सोचा है कि बेटी को लच खिलाने की खातिर (प्राय) तरद्दुद करना क्या आज के युग मे सभव है भी ? — या आने वाले कल मे क्या हाथ पाव इतने क्रियाशील रहेंगे, कि हर हफ्ते बेटी को खिलाने के लिए बढ़िया होटल ले जा सके ?

और क्रियाशीलता न रहने पर जब वह मा जैसी हो जायेगी, तब गुड्डम भी उसे

ऐसी बेपहचान आंखों से देखेगी ?

ऐसा सोचने का अवसर जब-जब आया है, उसे लगा है, कि कल्पना और सच्चाई दोनों जब एक दूसरे के सामने होते हैं, तब एक बहुत बड़ा झूठ भी उन दोनों के बीच आन खड़ा होता है। पर ऐसे झूठ की मौजूदगी का खयाल तब आता है, जब मन पर ढेर सारी उदासीनता उतर आती है। तब व्यक्ति दुनिया को भावात्मक नजरिये से देखने की आकांक्षा करता है।

वह सहसा ही चेत-सी गयी। ध्यान हुआ, अभी ही तो — अपनी आकांक्षा के विपरीत — वह मां के अपरिवर्तित दृष्टिकोण पर आघात कर चुकी है। यह कहकर कि अभी लोग हैं, दुनिया में कि जो अकेले बैठकर भी हंस लेते हैं। पर आप जैसे ध्रुव भी अभी हैं, जो एक जगह डटे हैं, तो डटे ही हैं। और सीधी राह पर कभी पहुंचते ही नहीं, कि मानो, सीधे से चाबी लगाने पर जो ताला खुल ही गया तब तो घर पहुंच ही गये। फिर ध्रुव का क्या होगा ? — वह तो अटल है। — तो मत हटो अटल से ! खड़े रहो। पर हटोगे नहीं, तो गाड़ी तो आयेगी और खट से निकल जायगी।' 'खट' — वह संकेत से बताती है कि नहीं हटोगे तो सिर तो पटरी पर कटेगा ही।

हां, मां मानो सुनते ही भयभीत-सी आगे को सरक आयीं। वह भी उठ गयी थी। उसके दोनों हाथों की उंगलियां एक-दूसरे से गुंथी हुई थीं, और वह निर्लिप्त-सी कमरे के दरवाजे की ओर बढ़ी थी। उसके जाते ही अधीर होती सी मां भी उठकर अनायास उसके समीप आन खड़ी हुईं। सच्चाई की कड़वाहट और प्रबल तिरस्कार मानो वह घूट चुकी हों। बोलीं, 'कोई और बात करो।

आहत स्वर में मां ने अपनी ही कही हुई बात और अधिक आतुरता से कही, 'कुछ और मीना, कहो ! मां से कहो।

'कुछ और है ही नहीं' इच्छा न रहते हुए भी कहा।

"पर कितने ही समाचार होते हैं ?' मां की आतुरता मानो बढ़ती ही जा रही हो।

"समाचार मैं पढ़ती ही नहीं।" उसका स्वर वैसा ही निर्विकार अब भी है।

"फिर भी मां के स्वर की व्याकुलता चुक नहीं रही। उल्टा मीना को अनमनेपन से भर लिया। बोली "सूखा पड़ रहा है।" झुंझलाहट की झाग उसमें मानो सूख सिकुड़कर पसर गयी है। बोली, "किसान भूखों मर रहा है — पशु चर रहे हैं।" उसका स्वर झुर्राकर टूट सा गया है। बुढ़ापे में जैसे अवशता और रोग किसी को तोड़ डाले। पर सोचा — रोग तो हट्टे-कट्टे को भी तोड़ देता है।

मा सिर हिला रही हैं। किसान के भूखे मरने के प्रति, या गर्मी के चरने पर ? पर मा के चेहरे की कातरता सहारी नहीं जा रही उससे।

अब कब आओगी ? वही कातर भाव।

"देखो, जब वक्त निकले ।" आवेग उसमें फिर उमड आया है। उसके खालीपन को, गिलगिलाती सी तरलता को बेपहचान से कगार पर फेंक गया है आवेग।

फ्रिज से दूध की थैलियां उठाने तक सोच का हिस्सा भी मिट्टी मिट्टी हो गया है। सूखे समुद्र की छटपटाती मछली आंखों तक उठ आयी है। यह सूखी छाया मा देख ले, उससे पूर्व ही आंखे बचाती वह सीढ़ियां उतर गयी।

दबे-दबे कहीं

गेट के दूसरे कोने पर लाल बजरी के आर पार भागती लड़की ने एक नजर देखकर पूछा, आ गयीं आंटी ?"

"हां," मैंने सिर हिलाया और बरामदे की सीढ़ियों पर बैठ गयी।

बैठने पर भी मेरा हाफना बन्द नहीं हुआ। ऐसी हताशा मे लग रहा था कि मेरे मरने और जीने के बीच सिर्फ एक रेखा भर का अतर रह गया है — मैं ध्यान बटाने के लिए अन्यत्र देखने लगी। लड़की तब स्क्वेयर की दीवारों के साथ-साथ चलती अपनी जाफरी से सटकर खड़ी हो गयी थी। पूछा, "क्या है ? आज अकेली खड़ी हो ?'

'हां, आज शनि को भी पापा दफ्तर चले गये हैं।"

'तुम्हे कुछ चाहिए ?"

लड़की ने सिर हिला दिया, 'नहीं, पापा आ जायेंगे अभी "

मैं चाहती हू लड़की को कुछ दू, लेकिन झिझक रही हू क्योंकि अभी अपनी लडखड़ाती सासों पर भी काबू नहीं पा सकी। और देने के लिए उठना पड़ेगा।

आप यहा हवा म क्यों बैठी हैं ?

हां, हवा मे बैठना ठीक नहीं। मैं उठकर दीवार की ओट तखत पर बैठ गयी हू। यहा से बाहर का कुछ हिस्सा दिख जाता है। बाहमनी आयेगी तो दिख जायेगी। पर बाहर कोई छाया तक नहीं फटक रही।

मेरे पर्स मे एकाध सैंडविच था, जो मैंने उस लड़की को देना चाहा था, पर जिसे अब मैं खा रही थी। पर्स मे छोटी सी बोतल मे पानी है मेरे पास, मैं चाहू तो इस घटे आध घटे मे मैं दवा भी ले सकती हू।

अब बाहर दूसरा पहर ढल रहा है। हवा मे घुलती मिलती बूंदे किनमिन का दृश्य उत्पन्न कर रही हैं। उस किनमिन मे सहसा बिल्ली के तीन चार बच्चे अपनी खोह से निकलकर मानो मा की तलाश मे आखों के पपोटे खोले बढ रहे हैं। उनमे जो एक बच्चा

बद्ध है, वह धीरे से बरामदे की सीढ़ी चढ़ आया। उसे भगाने के उद्देश्य से 'श्चि' की आवाज निकलती हू, तो लड़की जाफरी के पार से बोलती है

'ये, यो नहीं निकलेगे आटी।

"अच्छा ? ताली बजाकर भगाने को उठती हू, तो सीने मे धक्का लगते ही 'खों-खों', भीतर किसी आघात जैसी चुभने लगी है। मैं तलफला उठी हू।

दवा और पानी — एकसाथ मुह मे डालकर गटक गयी हू। ताले से चाबी लटकायी है, तो लड़की ने आकर ताला खोल दिया है। 'चलो आटी।

'थैंक्यू! अब तुम जाओ — शायद तुम्हारे पापा आये हों ?"

लड़की के स्पर्श से आराम मिला हो जैसे। थोड़ी देर बाद जब बाहर निकली तो बिल्ली को तख्त पर पसरे पाया। फिर वही झुंझलाहट ! क्या समझ रखा है इन जानवरों ने कि मौका मिलते ही आकर गुदगुदे बिस्तर पर ठाठ जमायेंगे ? दरवाजे के पीछे से छिपकर बिल्ली पर ब्रूम फेंका, जाफरी का गेट बद किया, तो खिड़की की ताख पर धरी दवा दिख गयी। डॉक्टर की हिदायत भी याद आयी — 'कायदे से लेते रहिएगा दवा। फिर बाह्मनी की हिदायत — 'लग के इलाज करो बीजी ! चेहरे पर तो मरघाह सा पीलापन फैला हुआ है।

ऐसी बाते जैसे एक अदृश्य सकट-सा खींच लाती हैं। और तब अधेरे मे ही जैसे किसी निर्दिष्ट स्थान की ओर भागने लगती हू मैं। अकेली ! तब ये दिन, ये क्षण जैसे सिकुड़ने से लगते हैं। जैसे उजले दिनों के बाद, एक धुंधली गुफा हों क्षण ! सबि जीवन के बाद एक सीमित क्षण !

अपने मे सीमित-सी पहले नहीं थी मैं। बल्कि जब आयी थी तो पड़ोसियों मे जिज्ञासा थी, और वे जानते नहीं थे कि मैं खुद ही किसी से दोस्ती करना नहीं चाहती। पर बाद मे आभास होने पर वे दूर हट गये। दूर से ऐसे देखते, जैसे कोई चुपचाप मदारी का तमाशा देखता हो।

पिछले महीने, अभी जब मुआइना नहीं कराया था, तो सामने वाली पड़ोसन का एक मुहावरा सा कान मे पड गया — आप न मूए ब्रह्मना और न मरने दे।

उस मुहावरे के अर्थ एकाएक समझ म नहीं आये थे, पर बाद मे जब सुना — 'इनको ठीक नहीं होना तो न हों, पर हम ता रातों को सोने दे।' तो सुनकर सन्न रह गयी मैं। माने — मुझे मरने देना नहीं चाहते, या कह रहे हैं — 'जाओ, मरो भी, किसी तरह ! हमारी

नींद की ही खैर मांगो।

फिर उसी दिन बल्कि उसी सुबह मैं डॉक्टर के यहां गयी। वहां मुआइने के पहले मेरे कानों मे इस पड़ोसन लड़की के पिता के शब्द भी गूंज आये थे-'या तो इनका खाविंद बेटी सहित इनके ही पास आन रहे, या फिर ये ही बेटी और बच्चों के पास जा रहे।'

'देखो कि कैसी विषम स्थिति है ?' आवाज मेरे होंठों से बाहर निकल पड़ी, तो डॉक्टर ने पूछा, 'स्थिति क्या सचमुच ऐसी है ?

डॉक्टर अब मेरी नब्ज देख रहा था, फिर परीक्षण टेबल पर वक्ष और पसलियां। फिर पूछा, "इतना विषम तो क्या है ?'

मैंने धीरे धीरे सब कुछ बता दिया।

और आपको शक है — भयानक रोग का ?"

"पता नहीं, पर रोग इसी तरह बिगड़ते हैं। कोई भी गांठ — या लगातार एक ही जगह पर आघात ?" मैंने डॉक्टर को बताया कि सिम्पटम्ज से मुझे पता चलता है ।

आप सिम्पटम्ज जानती हैं ?" डॉक्टर उस समय ब्लडप्रेशर की ऊपर नीचे गिरती गति पर ध्यान केंद्रित किये था। फारिग होते ही पूछा, 'इससे पहले मुआइना कराया था ?"

मैंने सिर हिला दिया — "नहीं, पर मेरा दामाद बिना मुआइने भी उठ गया था।"

देखें, पूर्व कल्पना के अर्थ कुछ नहीं होते। अब आप अपनी सोचिए।"

डॉक्टर जब जाच-स्लिपें तैयार कर रहा था तो सोच रही थी कि जाच-परिणाम तो इस अज्ञात स्थिति से कई गुणा दारुण होते होंगे। पर एक लिहाज से सार्थक भी, कि परिणाम निष्क्रिय मन को झकझोरकर प्रतिक्रियावादी और फुर्तीला बना देते होंगे। माने कि लड़ो — लोगो — जूझो! — भूचाल आने के बाद की स्थिति से जूझो!

कुछ मुआइने हो गये थे, कुछ खाली पेट होने थे। अतः प्रेसक्रिप्शन हाथ मे लिये हुए मैं पास के मेडिकल स्टोर से दवाइयां ले आयी तो कानों मे डॉक्टर का स्वर अनुगूंज जैसा गड़का — 'फौरन शुरू कीजिए — ठीक हो जायेगी। तब सोचा कि लोग सदैव जीने की सलाह ही क्यों देते हैं ? जानते नहीं कि अततः तो मरना ही है।

भीतर किसी ने कहा—'मौत क्या आती है कभी आदमी के चाहने पर ? दवाएं, ?'

पर हममें से कितने दवाएं खरीदने की हैसियत रखते हैं ?

I

घर के गेट पर छज्जे तले उस दिन भी वही कोढ़ी था। एक टांग-कटा भी कभी-कभार मिलता है यहां और तीन कंकाल बच्चे। पता नहीं कितनी बार मुझसे डांट खा चुके हैं इसी मांगने की लत पर! पर सवारियों की कतार के आगे — कभी यहां, कभी वहां दिख ही जाते हैं। मुआइने वाले दिन उन पर गुस्सा नहीं कर सकी मैं। शायद कि बरसों से ये लोग दवा-दारू के लिए ही इकट्ठा कर रहे हों?

उस दिन बाह्मनी पर भी खीज हुई नहीं। शायद यह भी एक वजह हो कि उस दिन वह जल्दी आयी थी, और मैंने उसे सिर्फ उलाहना दिया था कि पहले श्राद्ध पर भी गैरहाजिर थी वह।

बाह्मनी ने उलाहने की वह शर्मिंदगी जज्ब कर लेते कहा था — 'वाकई चूकी पड़ी हूं मैं, बीजी, पर उस दिन किसी ने घर में मेरे मालक की ही तिथि बता दी थी। ये दो दो तिथियां जो मिल जाती हैं न, तो आदमी न इसकी सोच सकता है, न उसकी, फिर जैसे दूसरे कहें — तैसे करना पड़ता है।

मैं हैरत में बोली थी — 'बता, ऐसे में तुम्हारा भरोसा कर भी सकती हूं मैं? तब साथ ही मुझे यह याद आया कि मैं खुद क्या अपना भरोसा कर सकी थी, कि कभी डॉक्टरी इलाज को भी जाऊंगी? पर कभी काम चलते हैं जोर जबर के दम खम पर, कि हौसला मुझमें इतना ही था कि जांच के दौरान मैं विरोधी कामना कर रही थी, कि कैंसर हो ही जाये, और मैं छूटूं, नहीं तो मेरे गिर्द तो अंधेरा है। अंधेरे में मुझे एक अजीब-सी शक्ल भी दिखने लगती है, जो खुद पर तवज्जो एकाग्र करने की मांग करती है, जबकि इस मांग से उदासीन रहना चाहती हूं मैं। ज्वालामुखी को फटने देना चाहती हूं, कि फटेगा, तभी तो धातु के खजाने हाथ लगेंगे।

मतलब जहां एक की मौत, वहां दूसरे की जिंदगी। पर देखो कि एक बार फिर जिंदगी की रक्षा के लिए अस्पताल गयी हूं। पहले परीक्षण डॉक्टर के हाथ में आ चुके थे, पर खाली पेट हुई जांच के पर्चे अभी ढूंढ़े जा रहे थे। ढूंढ़-भाल अर्दली को सौंप, डॉक्टर ने पूछा, 'दवा लेती रही थीं?'

'जी।

'पहले क्या लेती रही थीं?

'वही, जो कभी-कभार डॉक्टर ने दी होगी।"

'जानती हैं, दवाएं प्रिस्क्राइब कराये बिना नहीं लेनी चाहिए?

डॉक्टर ने पर्ची पर लिखा — 'सैल्फ मैडिकेशन '

उस क्षण भयभीत हो आते पूछा, "क्या इन दवाओं से हुआ है ?"

जाच-रिपोर्टे   मिल गयी और देख ली गयी। फिर लिटाकर परीक्षण किये, और डॉक्टर ने अपने हाथ खींच लेते कहा, "इस लिहाज से तो डर की कोई बात नहीं। डॉक्टर ने बताया कि वह तो डर ही गया था।

पर मैं नहीं डरी। हा, यह जबान पर आया था, कि लिहाज इस तिथि का मानो, चाहे उस तिथि का, करना वही पड़ता है, जो डॉक्टर समझे।

जब अपनी प्रिसक्रिप्शन उठा रही थी मैं, परीक्षण-टेबल पर सिर उठाकर बैठे हुए एक हृष्ट पुष्ट नौजवान को डॉक्टर कह रहा था, 'एक्स-रे करवा ही ले आप .. कभी बाहर की तंदुरुस्ती भी अमूमन ऐसी होती है कि कोई सोच ही नहीं सकता   कि भीतर कहीं रोग होगा ?'

पूरी बात सुने बिना ही मैं आ गयी थी। अगर कुछ देर और वहा रहती तो शायद उस मरीज से ही पूछ बैठती कि आप किसी सुभाष को जानते हैं ?'

कभी-कभी किसी की शक्ल किसी दूसरी शक्ल से इतनी मिलती-जुलती है कि आदमी सशय छोड़कर उसे असल मान लेता है।

कैसे भरे भरे शरीर वाला, हसती आखों वाला था सुभाष। रूना और बच्चों को साथ लिये उसके सामने था। उसी दिन तो बता रहा था — 'मैं अब वो घर बदल ही लूगा। वह अच्छा नहीं लगता मुझे.

घर बदलने की चाह उसकी आखों मे सैलाब जैसी बह रही थी। यही था सुभाष मे। एक आग्रह, एक उतावलापन और उमड़न। — क्यों है उसमे ऐसी उमड़न देवबूपन-सा ? एक तेज धार वाला जज्बा ?

'टच वुड' — यदि ऐसे जज्बे को कुछ हुआ ? — मैं कसमसा आयी थी। फिर मैंने अपनी भावना पति से कही थी, 'देखो, याज्ञनिक साहब। ऐसे मे मगल या शनि के लिए दे टालना चाहिए।

'अच्छा-अच्छा, दे देंगे — भरोसा रखो। पर तुम भी दामाद से कम उतावली नहीं हो ?'

पर सुभाष का भरोसा क्या ज्यों-का-त्यों रख सके हम ? घर बदलने की जगह उसने दुनिया ही बदल ली। कैसे सारे भरोसे कच्चे हो जाते हैं ?

बाहमणी से भी कच्चे भरोसे वाली बात उठायी थी मैंने, तो बोली — 'बीजी, क्या

करू, दुखड हू। वैसे आप ठीक कहती हैं कि हम लोग लोभ की वजह से बन्नाम हैं। पर मैं आपके अहसानों से दबी हू। आपने रजाई बनवानी है न, जब कहो, आ जाऊगी। पर कसूर मेरा उतना नहीं भी, क्योंकि मालक सिर पर था, तो वफिन्नी थी मुझे, अब कभी अनाथ बेटे का ही खयाल आ जाता है, कि आखे गडाये बैठा होगा — बई मा कब आयेगी, और कब कुछ लायेगी ? उसी के लिए घूमती रहती हू -- घूमती रहती हू

अपनी गीली आख पोंछते न-पोछते वह फिर बोली — 'बीजी, अब — क्योंकि मैं ही मैं हू न पीछे, तो सोचती हू कि हाय, मेरे बच्चों को कभी रुलना न पडे ! इसलिए घूमते-घूमने ' 'घूमने' शब्द पर वह इतना जोर डालती है कि लगता है, बाहमनी के सलौहे गालों पर मानो निरतर घूमने की अतिरिक्त गरिमा उतर आयी हो ! या फिर उसके चेहरे पर सत्रास की तपन हो ! जो हो, उसकी दयाई मुद्रा ने मुझे बाध लिया है। — और मेरा वह गर्व झड गया है कि मैं उसके काम आती हू।

फिर रह-रहकर आखे पोछने के दौरान वह बोली -- 'बीजी, मैं हमेशा झूठी पड़ती हू कि मैं उधर से सीधी निकल जाती थी ! पर करूँक्या, बध-बधाय घर ही रह गये हैं अब। बस — हदे लिय और पलटी। और ये कभी कभार का चक्कर भी, बीजी, लालच मे. कि लोग दिन-निहार के सिवा क्व देते हैं ? मरा कभी कभी का आना य तो जोगी वाला फेरा है — बीजी '

सोच रही हू, मरा अस्पताल के चक्कर काटना भी सिवा जोगी के फरे के और क्या है ? कभी हरे की तरह — खिडकी स दवा हासिल कर ली, कभी नहीं।

क्या इस सरकारी हरे का कोई लाभ कभी हुआ है ?

उसी वक्त खेलती खिनाती लडकी फिर टोक गयी है, आटी, फिर बाहर बैठी हैं ?"

"हा, यहा खुले दरवाज के बाहर आसमान दीखता है।

'हा, पर खुले दरवाज से पिल्ला भी ता आता है ?'

"है ?' मैं लडकी की ओर दखती हू। वह अपने बालों को कानों के पीछे समेटती कहती है, 'वह रहा ! कुर्सी के नीच. है वो

"ठहर जरा मैं धीरे से फुसफुसाई। परले कोने स ब्रूम उठाया और पिल्ले पर फेका। पिल्ला कू कू करता सीढियों की ओर लुढका और फिर जैसे सब कुछ ठहर गया। ठीक तब आयी बाहमनी। आते ही उफ्सास जन चेहरा जमीन पर झुका लिया। फिर हलत-पलत फर्श पर ही तख्त से टेक लगाते हुए कहा

"सचमुच शर्मिन्दा हूँ, बीजी! पहली को तो आयी नहीं, पर सतमी का तो मुझे भी अफसोस है। बाहर से देखा, आप थीं नहीं, और मैं बाहर ही बाहर लेती निकल गयी। वैसे आती भी नहीं, बीमार सी थी मैं, पर पेट तो पालना है बीजी! हे भगवान, मोताज किसी को न बना!" कहते हुए उसके होंठ एक-दूसरे से जुड़कर गोल हो गये।

'पर अष्टमी तो आज निकल गयी। फिर आने का फायदा?'

वह बात काट देती है, "नहीं बीजी! आज, आप सतमी का सीधा दे सकते हो। अब इसी शाम से न" उसने अपनी हथेली फर्श पर जमाते हुए अपने वक्तव्य को ठोस प्रमाणित करते जैसे भाव मे बताया, "आज शाम से कल बारह बजे तक अष्टमी है। बस, सूरज चढ़ते ही आप तरपण डाल देना — फिर ले जाऊंगी, मैं।" रुककर फिर कहा, "वैसे उलट सुलट हो जाता है मुझसे भी, पर निबाह रही हूँ — सुख से हो, चाहे दुःख से" फिर अपनी पोटली की गांठ पर कुहनी जमाये, हाथ ठुड्डी पर धरे अदृश्य मे ताकती सी अपने मालक से मिलने वाले सुखों को वह रह-रहकर चितार लेती रही। ऐसा करके जैसे अपनी मौजूदा व्यथा को कम कर रही हो!

'तुम नीचे क्यों बैठी हो?' सहसा मैंने उस पर दृष्टिपात करते हुए उसे तख्त पर बैठने का इशारा किया। तब अपनी पोटली फर्श से सरकाती, ढिलकती सी उठी और हरहराती बेल जैसी फूलती सास भरने लगी। उसकी लयबद्ध बातों पर मेरा ध्यान अब पूरी तरह केंद्रित है। फिर भी मैं जान नहीं पा रही कि अपनी बातों से वह मेरे साथ अपना दुःख बांट रही है, या उसकी मौजूदगी और बातों का लाभ मुझे हो रहा है, और उसके दुःख सुन-सुनकर मैं अपना दुःख कम कर रही हूँ। बातो से ही दुःख कम हो, इतना ही सही — क्योंकि दुःख ही नहीं, सिर पर बीमारी और बुढ़ापा भी है। गम और पीड़ाएं! फिर भी बाहमनी की पीड़ा और मेरी पीड़ा मे अंतर है। मैं गम या यातना ढोकर उस सापिकोर शर्मिन्दा करती हूँ। उसका खोट — भूल चूक उघाड़कर मैंने उसे सदा-सदा दुखी ही किया है। शायद इसीलिए अब मैं चाह रही हूँ कि उसे दोष-भावना से मुक्त कर दूं। पर क्या देकर उसकी पीड़ा का अंत किया जा सकता है? क्या कोई किसी को कुछ दे सका है? क्योंकि मुझ को ही कुछ नहीं दे सका! — सोचते ही नये सिरे से सुभाष का हंसता चेहरा मेरे सामने आ गया है। सुभाष कह रहा है — देने की बात रह ही गयी, और मां चली गयी! मैं कितना चाहता था — मां पर अपनी निष्ठा व्यक्त करूं? अगर एक बार आ जाये मां — अब, तो उसे कितना सुख दे सकूं।

अब मां को सुख देने ही चला गया है सुभाष?

व्यक्ति देने का सुख क्यों पाना चाहता है ? क्या बडप्पन ओढना चाहता है — दे सकने का बडप्पन ? यह भी क्या खुद को ही देना न हुआ ? कम-से-कम — नीत्शे का निष्काम धर्म तो नहीं है यह ? न ही गीता का निष्काम त्याग है यह ?

यह सोचने का एक तरीका है कि हमने देने मे शक्ति का उपयोग किया। और अब शक्ति लुप्त हो गयी है, तो और दो। और नहीं तो देने की लालसा तो रखो ही। पर बिना शक्ति के लालसा जब यूगी हो गयी है, ये तब चीजों का मोल हुआ ? चीजों की याद आने पर मैं बाहमनी के लिए अलग की हुई चीजे उठा लाकर उसे झोले मे डालने को कह रही हू।

'महाराज वड्डी वड्डी उमरा करे। तेरे बच्चों की तती हवा न लगे। बीजी, तेरे पुत तेरे को सुखी करे।"

बाहमनी गठरी म सहेजकर, गठरी फिर तख्त के पायते धर देती है। गठरी का सहारा लिए फिर ऊंघ जाती है। ठडी हवा ने या आराम ने उसे अभिभूत कर लिया है। मैं भी उसकी ऊंघ नहीं तोडती बल्कि उठ जाती हू कुछ खोजने, कुछ और — जो मैं उसे दे सकती हू। पर किसलिए ? क्या ये सुनने के लिए कि मैं उसके काम आती हू ? और बदले मे उससे असीस मोल लेती हू ? मोल न सही, पर जानने-सुनने का सुख तो किसी हद तक लेती हू।

सहसा बाहमनी तमककर उठी है। भौचक इधर उधर देखा और पूछा, 'कितना वक्त हुआ बीजी ?' फिर मिचमिचाती आखों से उतरती सध्या मे शायद किसी भूली राह पर पडे अपने बच्चों को खोज रही है।

उसे पानी देती हू मैं, 'लो पानी पिओ।' मैं जानती हू वह जब भी जाने या अनजाने मे यहा पलँग पड जाती है तो उठते ही 'पानी' मागती है। फिर मौसम जैसे ही जाडे का होने लगेगा, वह खुद-ब-खुद आयेगी और चाय की तलब जतायेगी। पर, अब ? — पानी पीकर, कपडे झाडती उठ खडी हुई है वह। गठरी थोडी भारी लगी। उसे बगल मे सभालते बोली, झपकी सी लग गयी बीजी — पर बडा सुख मिला। पैरों को कैसा आराम ! बीजी, राम तुझे सुखी रखे। वड्डा-वड्डा सुख।'

सोचा — सुख कभी मोल बिका है ? या किसी के दिये पाया किसी ने ? वह तो अपने-आप आयेगा — भीतर से !

'बीजी, तो कल अष्टमी को आना है न ? श्राद्ध है-ई कल — जतरी देखकर बताया था किसी ने।'

मैं चुप रहती हू, जैसे उसे तौलकर पक्का कर रही होऊ, कि 'कहे — तो रखू, नहीं तो सीधा मन्दिर भेज दू।

वह कहती है, आ जाऊगी घूमती हुई, कभी भी आ जाऊगी। न भी आयी, तो आप ढापकर रख देना। न हो, अगले दिन ले जाऊगी। पता नहीं न बीजी " वह आजिज-सी सूरत बना लेती है, 'पता नहीं, कौन यजमान कहा रोक ले?

पर अपना भरोसा कायम रखने के साथ ही मुझे भी तैयार कर रही है-अपने अनुपस्थित रह जाने की सभावना से। 'यजमान पर है बीजी! क्या करू, पेट जो पालना है "

'यजमान' शब्द यों उच्चरण करती है, जैसे जानती नहीं कि यजमान या मौत किस घिर — कैसे आड़े आन रहे! — मौत?

क्या वह जानती है कि बात करते समय वह कैसे विनीत हो आती है? और मौत का भय? मैंने सोचा — कितनी बढिया चीज है मौत! कि एक को विनीत बनाती है, दूसरे को विनीत होने से बचाती है।

बाहमनी चल पडी, अपना विश्वास दिलाती सी कि वह आयेगी। हो सका तो मेरी बेटी के घर भी चली चलेगी। — आहा! मैंने सुना है बीजी, कि बडी राणी है — आपकी बेटी! नाम की राणी ही नहीं, वो तो धरम करम की भी राणी है।'

बाहमनी बेचारी 'रूना' भी नहीं कह सकती या शायद राणी कहने से ही मन-भर तृप्ति मिलती है।

रूना क्या सचमुच रानी है? धर्म कर्म की रानी? — बाहमनी कहती है —'बेटी राणी वाला धर्म निभा रही है, कि अपने मालिक का छोडा हुआ काम हिम्मत से सभाल रही है। नहीं तो — कौन कर सकता है बीजी? पीछे रह जाओ न — तो कोई मुह उठा के नहीं देखता! बीजी, कभी तो — बस खुद नहीं देख सकता! और मुझे तो कभी शक हो जाता है कि मैं उस छोटे को देख भी रही हू? कई बार बीनी — यतीम जैसा मागता है, तो डाट देती हू — चला जा, नहीं है कुछ — फिर बुलाकर फुसलाती हू — कल ला दूगी — मानकर सो जाता है। तब उसे देख-देखकर रोती हू। क्यों? — जो मन्नत माग-मागकर लिया था — पर देखो, कि मागकर बेटा लेने वाला ही नहीं रहा, कि अब आखों मे भरे उमे। अब लाले पेट भरने के बचे हैं।

पेट भरने तक पहुची, तो लगा, देर हुई कुछ पेट को भी चाहिए। रसोई मे इधर उधर

देखती हू। सामने ताख मे एक सेब और केला धरा है। चाय तैयार होने तक रहा नहीं गया। जल्दी ही खत्म हो गया सब। अब ? — एक टोस्ट — अब काफी है। चाय-टोस्ट से फौरी तौर पर रिलीफ मिली — तो सोना चाहा, नींद आते ही सारी खराश-ख़ुश गायब हो जायेगी। पर खराश मौजूद है, या जमकर सूख गया है खून गले मे ही ? एक प्याली चाय वैसे भी चाहिए मुझे। पर स्टोव मे तेल कितना है ? पता होता तो पूछ आती, कि राशन वाले ने कार्ड रिन्यू कराया है या नहीं ? या तेल दे भी देगा ? अच्छा होता, फरी वाले से एक बोतल ले ही लेती।

चलो पानी उबलने दू। पर बरतनों को हाथ लगाने का मन नहीं होता — महीनों पहले कली का सोचा था — पर बरतन सामने आने पर कली की सोच सताती है। बरतनों को ही बार बार रगडने लगती हू। कभी नीबू से, कभी इमली से ही चमकाती हू, पर कली तब और उतर जाती है।

देखकर एक बार 'रूना' ने ही कहा था — 'एक तो आप बरतन कली नहीं कराते।

पता नहीं क्यों सकोच हुआ था बताने मे, कि — 'छब्बीस मागता था, छोटे छोटे बरतनों के ! एक रुपये की खातिर छोड गया। बोला — बचता ही क्या है ? तीस के छब्बीस नहीं मजूर — तो रहने दो।'

'तीस के छब्बीस। शब्द खाता रहा था। 'कली की जगह, चाहे सिक्का जड जाते तुम' — कहना चाहा था, पर उसकी अकड के आगे चुप बनी रही। क्या करती, पीछे-पीछे जाती ? — पर पीछे गयी थी मैं, और वह सामान साइकिल पर बाध रहा था। इधर मुझे भी पैरों मे मरहम लगाते देर हुई, तो चला गया वह। जाने दो — मैं पराठा ही खा लूगी — दही के साथ।

दही की याद आयी, तो पाया, पडेमडे दही खट्टा हो चुका है। राशन कार्ड भी, अगर दुकान से न बना, तो कहा जाना पडेगा ? — मुझसे दूध के डिपो ही नहीं जाया गया था — और दूध के टोकन रद्दी की टोकरी मे डाल दिये थे। पर थैली मे दूध मिल जाता है। चाहे भारी हो — हल्का हो, पर दूध की भटकन नहीं। नहीं तो घर से कहीं जाना होता है ? ये छुट्टिया हैं, तो अस्पताल जाना हो रहा है। पर गद्दता कितना है कि छुट्टिया अस्पताल खा रही हैं। और पैसा दवाए खोस रही हैं, जबकि राशन तक पर खर्च करने की जगह मुझे रग और कैनवस चाहिए होते हैं। गले को चाय से गर्म करके दूसरे सारे उपचार भी कर लिये हैं। रग और फोल्ड खोल बैठी, लेकिन देर तक नहीं चला। कमर

टूटने को हुई, तो खराश भी तेजी से उठी। चलो, छोड़कर सो जाती हू। यों भी पखे तले धरधराहट लगातार बढ रही है। देखू, कहीं कोई खिड़की तो खुली नहीं रह गयी कि बिल्ली ही उछल आये रगों पर

सब सुरक्षित-सा है। हाथ-घड़ी मे चाबी और भर सू ? घडी दस पर रुकी है। दस से ज्यादा क्या होगा ? टाइम-पीस थोड़ा पीछे है। अनुमान से घुमाती हू बटन, पर घुमाते ही बटन हथेली पर आन रहा। ये क्या ? — ये तो बटन बदलना पड़ेगा ? पहले ऐसा था, कि घडी का कुडा एक ओर से छिदा-सा था और स्ट्रैप बाहर आ जाता था। एक बार रूना ने टोका — 'स्ट्रैप तो ठीक करवाओ अम्मा।'

'क्या है स्ट्रैप को ? ये तो इधर से कुडा गया चला लगता है

'बाई जो ।' रूना हताशा मे बोली — 'जो भी, इसे काम लायक ही बनाओ '

फिर वही सकोच। कैसे कहू कि पाच तक का खर्चा बैठेगा ?

फली को लेकर टोके जाने पर भी कहकर टाल दिया था कि 'ज्यादातर मैं स्टील से ही काम चलाती हू। अब बटन निकल जाने की बात जानेगी, तो झुझलायेगी कि 'दस रुपये आप मुझसे लो, पर इसे चालू रखो।

नहीं बताऊगी। घडी उठाकर दराज मे ही रख दूगी। नहीं तो बहुत उज्रदारी मे पड जाऊगी, कहकर कि 'सवाल दस रुपये का नहीं — और है कि '

आगे सोचने से पहले लगा, धचका पेट मे है, पर दर्द सीने मे। — मुह मे कसैली-सी उबकाई। बेसिन तक गयी और थूक दिया। गाढा गाढा और पीला-सा। कुल्ले करके सीधा बिस्तर पकड़ा। ठीक से लपेटकर सिर्फ सास लेने भर जगह रखी। — पैरों तले तकिया है, अब पैर भी नहीं टीसेंगे। नींद आ रही थी, पर बाहमनी पीछा नहीं छोड रही। 'आपको टीके लगवाने चाहिए। पैर की बीमारी जाती रहेगी। जूते — ही बन्द देखो। वह अपने पैरों के तलवे दिखाने लगी। ये जूतों ने काटा है — आपका टीकों से ठीक हो जायेगा।

'ठीक हो जायेगा, पर ये सु" क्यों नहीं ठीक होता ?'

बाह्मनी का चेहरा फिर आजिज हो आया — 'इलाज तो कराना ही पड़ता है, ' बीजी

ऐसे दिलासे पर अचक् सोचने लगी कि बाह्मनी अपने मस्कीन होने की बात कैसे भूल गयी है ?

पर भूल ही गयी है, तभी तो यादहानी दिलाती कह आयी है — आप टीके जरूर लगवाना, बीजी ! बडे-बडे एग्जीमा के जख्म तक ठीक हो जाते हैं '

यह जो मुझे इतना जोर देकर समझा रही है, अपना कितना कर सकती है ? — पर फिर सोचा, शायद इसे व्याधि यह न हो ?

पर हो भी, तो अतर होता है व्याधि मे ? दुख मे — व्यक्ति मे ?

उसे जरूरत थी पेटीकोट जम्पर की । दे दिया । बाकी फिर ढूढ रखूगी । हालाकि उसके सामने ये गाठ-भर कपडे । उनमे दो-तीन पेटीकोट भी, शायद रूना के पास — सुभाष की अम्मा के पडे हों । वही यहा डाल गयी हो ! किस उद्देश्य से ? यह कुछ भी नहीं कहा । पर उसे तो वैसे भी वस्तुओं से मोह है नहीं । मोह नहीं कि चलो, अब जैसा तैसा कट ही जायेगा उसका !

बाहमनी ने सुना, तो इतना साथ और जोडा — 'बीजी, चलो कट ही जायेगा पर अकेलापन नहीं कटता । और वो तो अभी है-ई बच्ची । और ये तो आपने बडा अच्छा किया कि बाबू जी को आपने राणों के पास भेज दिया । उसका अकेलापन तो काटने वाले अब आप ही हो ! नहीं तो बीजी उसने ठडा नि श्वास फेकते हुए कहा, 'रडेपा काटना बडा मुश्किल होता है !' बाहमनी ने कान छू लेते कहा, 'मन कभी तो बडा बेचैन हो जाता है बीजी, जैसे मैं पागल हो गयी होऊ। पर नहीं, फिर सोचती हू — पगला गयी तो इन्हे कौन पालेगा ? हिम्मत तो मैंने बाधनी है न, डरने उरने से कोई चलेगा ? — बीजी, डरो तो डर और डराता है ! बडे हौसले से काट रही हू पर. अगर आपको सुनाऊ कि कैसे एक बार हारी-मादी पडी थी एक बार नहीं कितनी ही बार ऐसा होता है बीजी ! शरीर जो रोगसोग का घर हुआ, पर मैं लडकियों को नहीं जगाती कभी, और खुद सो भी नहीं सकती । — तब आधी रात को आता है, और घेर लेता है । बिलकुल उसी तरह की खुशबू बीजी, जो जीते-जागते आदमी मे होती है । कभी इसे सपना नहीं, सच ही समझ लेती हू। आखिर जिसके साथ जिंदगी बितायी है, उसे इतनी जल्दी दूर कैसे समझ ले ?'

मैं उसे रूना की बाते बताने लगती हू कि कैसे सुभाष बार-बार सपने मे आकर सारी बाते पूछने लगता है।

सुनते ही वह पहले जैसी दयार्द्र हो आयी — 'पूछेगा कैसे नहीं बीजी ? — मरने की ये कोई उमर है ? — कौन मरना चाहता है ? लोग नहीं कहते, कि रूह नहीं मरती ? — कुछ रुककर बोली — मेरा वो जब जिंदा था, एक दिन मैं बीमार लेटी थी। दफ्तर से

आया, तो समझा, बीमारी का बहाना किये पडी हू — तो मेरे सिर से हाथ हटा लिया। हसने लगा और बोला — 'चल इधर — भाई — बहाना करके पडी है। उस दिन बीमारी मे भी मेरा दु ख भाग गया था। और देखो कि उसे सचमुच का बहाना समझकर वह फिर हस पडा — पर अब उलटा उन्हीं बातों को भुलाने का बहाना ढूढना पडता है। ऊपर से सारी रात आख नहीं लगती। लगे भी तो खुल जाती है।

आख लगने नहीं दे रही बाहमनी ? पलग की पाटी पर वक्ष थामे लटकी हू मैं। कमरे मे टाइम पीस की अकेली टिक-टिक ही मेरे साथ जाग रही है। बहुत मन हो रहा है कि नींद नहीं घेरती तो ? तो दो हाथ रग ही चढाऊ कैनवस पे। पर डरती हू, जोखों मे पडना भारी पडेगा। दीवार से लटकी तार मे स्विच है, उसे दबा दिया है — घडी मे, टाइम देखने के लिए बस गरदन उठाते और जरा सा गरदन वापस लौटाते, फिर छाती खखार उठी है और उठती ही गयी पीडा। साथ ही सारा खाया-पिया बाहर चिलमची मे। फर्श पर भी गडमड-सा गिरा है कुछ। लाल रस्सी और कुछ सफेद-पीले छिछडे-से। कपकपी सी छूट रही है। देखकर सोचा, सेब का रग ही होगा ? केले का गूदा या चाय का पानी — खट्टे दही का मट्ठा भी पिया था। फूड-पायजन हुआ लगता है। सेब-केला सभी फल तो मसाले से पकाते हैं लोग ! तेल घी का भी क्या एतबार ? या दवाए भी होंगी, इनमे ? किसी ट्यूमर की गाठ फूटी हो सकती है। धीरे से सतर्कतापूर्वक उठी हू। मुह को खाली सा महसूसते बेसिन पर कुल्ले किये हैं। चिलमची से बन्दू आ रही है। बाहर से मिट्टी लाकर डाल दू। फर्श पर भी। कमरे मे चलते हुए सिटकनी पर हाथ धरकर खडी हू। पट से-दबाया है दरवाजा, कि आसानी से खुल जाय।

खुले दरवाजे के बाहर मीठी बयार है। गर्म बदन पर उसकी सिहरन मुझे बडे दुलार से पलोस रही है। पक्षियों का कुछ धीमा कुछ मुखर कलरव कानों मे जैसे अमृत घोल रहा है। ये कौन-सी भाषा है, जिसमे पक्षी अपने साथी परिंदों का आह्वान कर रहे हैं ?

पक्षियों की आवाज का अनुकरण करती मेरी निगाह जाफरी के झरोखों तक दौड गयी है, फिर धीरे से बरामदे मे भी घूमने लगी हू मैं। तखत पर भीगे-सीगे कपडे पडे हैं। जाफरी के कोने मे फटा-चिथा-सा तकिया !— गुच्छम-गुच्छा कपडों का ढेर !— कपडों को फैला ही दू ! — सोचते हुए उधर बढी हू। देखती हू कि उस गुच्छम-गुच्छा मसनद-सी मे बडे आराम से मुदी आखों वाला कुत्ता आनन्दिमग्न नींद ले रहा है। 'हरामखोर!' मैंने उसे मन मे गाली दी। बिल्ली के पिल्ले पर जो ब्रूम कल फेका था, वहीं पडा था वह — उसे उठा लिया और ताककर मारा — झटके से उठता कुत्ता किकिआया — और दूर भाग

गया। दांत पीसते हुए कहा, "तेरी ये हिम्मत ? कुत्ते? "

जाफरी से झाकती लड़की हसने लगी — बोली, कुत्ता कोई गाली है आटी ?' वह फिर हसी, "और आप जो उस पर दया रखती थीं न, तो उसकी आदत बिगाड दी है, आपने।'

"दया करके पड़े रहने देने का मतलब कि मेरा ही नुकसान करे ?"

"पर खिसियाया कुत्ता है आटी ? देखतीं नहीं, लाल-लाल आखे ? आराम के लिए तो आना है।'

आपे से बाहर का आराम निकल जाये, तो पता चले इसे ?' — पर अगले ही क्षण मेरे भीतर किसी ने मुझसे ही पूछा — 'क्या दया और डिक्टेटरशिप — दोनों साथ-साथ चलते हैं ?'

तानाशाही वाले मुद्दे को बरतरफ करके सोचती हू कि अच्छा होता, तो एक पेटीकोट नम्बर मैं बाहमनी को कल ही दे देती। पर आज तो श्राद्ध लेने आना था ही उसे। दे देती। पर बात क्या इतनी ही है ? भीतर फिर किसी ने यह सवाल उठाया, कि न भी आती वह, तो भी श्राद्ध सामग्री तो किसी न-किसी को देनी ही थी। पर तुम्हारे लिए जरूरी थी बाह्मनी की उपस्थिति।

सोचा — तब ये दया का ढोंग क्यों ?

अब किंकर्तव्यविमूढ़-सी खडी हू। सहसा ही बूदे गिरनी शुरू हुई हैं। बाहर झाड़ियों मे पडोसी की मुर्गियां पख फडफडा आयी हैं। इधर उधर देखते बिल्ली के बच्चे भी निकटवर्ती झाडी मे दुबक गये हैं। तभी देखती हू आहट सूघता इधर कुत्ता बढ आया है।

दुरदुराये जाकर भी जीवन-लालसा म पूछ हिलाये आगे आना — कुत्ते के अलावा कोई करेगा ?

शायद राहत के लिए करते हैं लोग ? अच्छा, अगर मैं ही आज राहत चाहू और लला से कहू कि अपने बाबू जी को कुछ दिन यहा भेज दो ? तो कोई मुझे कुत्ता ही नहीं कहेगा ? — पर मुझे मेरी वर्तमान व्याधि अधिक यातनादायक लग रही है। — दूसरे की यातना और अपनी यातना मे अतर नहीं कर पा रही हू मैं। ये इन दो तिथियों के मिल जाने जैसा अतर है, जो स्पष्ट नहीं हो रहा। कौन व्याधि असल है, कौन नकल, पता ही नहीं पड रहा ?

पर, अतर है कहीं—किसी पीडा म, यातना और यानना मे ? स्वार्थ मे ? — कैंसर और कैंसर मे ? भले ही प्रत्यक को खा रही हो — कैंसर गाठ ? दबे-दबे कहीं न-कहीं ?

छुटकारा

जाने के पहले मैं भैया के कमरे मे आन खड़ी हुई हू। कमरे मे रोज का देखा सब-कुछ ज्यों का-त्यों सजा है, और जैसे भाय-भाय करते सन्नाटे स कमरा घिरा है। कुछ देर पहले, कमरे के फर्श पर जो थोड़ी सी धूप सिमट आयी थी, वह अब खिड़की के पीछे छिप गयी है।

यह धूप, जैसे मुझम लुका-छिपी करता कुन्नी का चेहरा हो, जो आखमिचौनी करता मुझसे मेरे जाने का सकल्प छीन लेना चाहता हो !

और, इस समय खिड़की पर खड़ी यही सोच रही हू कि कुन्नी के स्कूल से छूटने का समय होने से पहले ही चल दू। कुन्नी को खाना देकर जब लौटी थी तो डेढ बज रहा था। मा को तैसा छोड गयी थी, वैसी ही वह अब भी सुई-डोरे मे व्यस्त थी। आगन पार करते समय लगा था, कि सुई-डोरा मा का सदैव सगी रहेगा, जैसे मा इसे विरासत मे साथ लायी हो।

यही बात एक दिन अरुण भैया से छिडी थी— 'मा का सुई-डोरा क्या छुड़ाया नहीं जा सकता ?'

भैया वैसा ही दीवार की ओर चुपचाप देखता रहा था।

यही प्रश्न मैंने दोबारा किया, तो बोला — 'कैसे ?'

देखो, अरुण भैया ! अब हम दोनों को कुछ करना चाहिए — मा के लिए।

तब हम दोनों चौथे वर्ष मे थे। मैं आर्ट्स की और भैया एम० बी० बी० एस० के।

भैया ने एक अधूरी सी जम्हाई लेते हुए कहा था — 'कुछ अपने लिए करना होगा, या मा के लिए ?'

मैं भैया की बात नहीं समझी। उसकी बात समझ मे कम आती है, उलझी ज्याद होती है। पिता जी की बातों की तरह। दोनों को सुलझाकर कहने को कहो, तो उन्हे खीज

आती है।

'तुम खीजते क्यों हो ?' मैं भैया से कहती हू।

'खीजता हू ?'

वह मुझे ऐसे देखने लगता है, जैसे उसे मेरी बात का विश्वास नहीं हो रहा।

और मा ने एक बार कहा था — 'तुम भी उसी का अनुरूप हो।'

'तब तो अच्छा है। तुम अपनी खीज मुझ पर झाड लो।

और वस्तुत खीज मुझमे जन्म लेने लगी थी। किंतु मा की उक्ति को स्वीकारा हो, यह याद नहीं पडता, पर मैंने भैया से पूछा था— 'अच्छा, कोई किसी का अनुरूप होता है ?'

'होता क्यों नहीं। सभी सभी के अनुरूप हो सकते हैं अकुर पेड ही के अनुरूप नहीं होता क्या ?'

भैया से तब मैंने यह आशा नहीं की थी, किंतु भैया बडा है, और उसने बात का समर्थन किया है, यही बहुत था।

वैसे भैया मुझसे दो-अढाई वर्ष ही बडा है, किंतु बाते वह वर्षों के अनुपात से नहीं, अपनी विद्वत्ता के अनुपात से करता है। — यों वास्तव मे विद्वान थीं बडी दीदी, किंतु वह अब नहीं हैं — और अब भैया ही बडा लगता है। और छोटी है कुन्नी।

आह, बेचारी कुन्नी। — मैं धीमी सी प्रस्फुटित नि श्वास को होंठों के भीतर कसकर भींच लेती हू। कुन्नी और दीदी की याद ऐसा करने से और अधिक बढ जाती है, और मन को मथने लगती है। डबडबाई आखों से बाहर देखने लगती हू तो पाती हू — सडक पर बिखरी धूप मैली और धुंधली पड गयी है।

दीदी तब थीं —

धूप उस दिन भी धुंधली और मैली पड गयी थी। धूप की मैल का एक चिथडा जैसे दीदी के मुख पर चिपट गया था, और लगा था, कि मौत का बेधडक साया जैसे पीले चेहरे को ग्रस रहा था। वैसी ही उस दिन भी वह खिडकी पर खडी थीं, और दीदी ने उसका आचल थाम लिया था — अम्मीं !'

दीदी अमिया' कभी नहीं कहती थीं। खास तौर से जब कोई विशेष बात कहनी होती —और इसी तरह आचल या साडी का छोर कुछ भी खींच लेती थीं।

मैं दीदी की खाट पर बैठ जाती हू — 'क्या है?'

'कुन्नी अभी नन्हा अकुर है, उसे तुम बोर्डिंग हाउस से हटा लेना।'

अच्छा किंतु '

'पर, मा से मत कहना — तुम समझती हो ?'

'मैं सब समझती हू — पर तुम क्यों नहीं समझती हो दीदी ?' मैं एक जम्हाई लेती, फिर उठ जाती हू।

'तुम कुछ कुछ अरुण-जैसी होती जा रही हो ?'

मुझे याद आ गया — मा भी कह रही थीं।

'किंतु — तुम ऐसा न करना। — जानती हो, ऐसा कुछ समय से पहले सोचना

दीदी का चेहरा और पीला पड गया।

'समय से पहले कुछ भी अच्छा नहीं होता, समझीं ?'

समझने या न समझने की दुविधा मिटाने के लिए मैं फिर बाहर देखने लगी थी। बाहर रिम-झिम बूंदे गिरने लगी थीं, भीतर दीदी। मैंने पलटकर देखा तो दीदी ने मुह फेर लिया। दीदी शायद चाहती थीं, मैं उनका 'रिम-झिम' आसुओं का गिरना न देख सकू।

'यह असमय की वर्षा है, तुमने देखा ! एकदम बद हो गयी है, और धूप छिटक आयी है।

मैं दीदी की ओर जान-बूझकर नहीं देखती। दीदी असमय मे जा रही थीं। — हम अपनी कोशिशें बेकार कर चुके थे।

और आज, सुबह से ही ऐसा हो रहा है, कि वर्षा सहसा आ चुकी है। स्कूल जाते समय मैं कुन्नी के लिए छाता ढूढती हू — तो मा कहती हैं, "छाते की जरूरत नहीं — असमय की वर्षा है — लेकिन दो एक छींटे पड जाये तो अच्छा ही है। फसलें बच जायेगी। — फरवरी का अत है, सोचती हू — अब फसलें क्या बचेगी, वह भी दो-एक छींटो से।

फरवरी ! — घर में फरवरी महीने मे वैसे भी चुप्पी छाई रहती है। फरवरी के अत मे दीदी का प्राणात हुआ था। तब से यह तीसरी फरवरी है।

अत से कुछ दिन पहले दीदी ने कहा था — क्लब चलने को। 'अरु ?' — भैया को यही कहकर पुकारती थीं वह।

'बहुत दिन हुए, क्लब नहीं गये ?'

'क्लब ? क्यों ?' भैया भौंहे उचकाकर, दीदी के चेहरे पर गौर से जैसे कुछ पढ रहा

हो ! — और फिर टाल गया हो !

'क्लब जाकर क्या होगा ?'

जाने को मन हो रहा है। जाने क्यों वहा का क्लब मुझे अच्छा लगता है। मैं जानती हू क्यों — किंतु आगे नहीं कहा गया। क्योंकि सभी जानते थे, क्लब की दीवार का एक हिस्सा कब्रिस्तान से सटा था।

'उल्लू बोलते हैं इस क्लब मे — कौन जाता है वहा ?' भैया कहता है और फिर भैया और दीदी — दोनों ही तब सुदूर मे देखने लगते हैं। कोई कुछ नहीं कहता।

उसी दिन पहली गाड़ी से भैया दिल्ली चला गया था, और उसके अगले ही दिन — भैया के साथ दिल्ली से एक डॉक्टर आकर दीदी के फेफड़ों की जाच कर गया था।

दोबारा दिल्ली पहुचकर भैया ने दवाइया भेजी थीं — फिर एक खत। खत का पूरा ब्यौरा याद नहीं पड़ता। कुछ अश याद हैं। भैया ने नौकरी कर ली है। अब दिल्ली मे जगह ढूढ रहा है। बीच-बीच म आता रहेगा।

किंतु अरुण भैया बीच मे आया नहीं। दो-एक खत आये। दीदी का हाल पूछा — फिर दीदी नहीं रहीं। खत भी नहीं आये।

और — दीदी के प्राणात के बहुत दिनों बाद जब भैया आया भी, तो पहले तो अपने कमरे मे बैठा ही नहीं गया उससे। मरने से पहले दीदी ने इसी कमरे मे आना चाहा था। इसी कमरे के सामने खाट बिछवाई थी, क्योंकि खिड़की के बाहर वाली यही लबी सड़क — क्लब को जाती थी।

बाद म इसी कमरे मे बैठकर भैया एकटक दीवार को ताकता रहता था। उसे जो भी खाने को दिया जाता, खा नहीं सकता।

'हर चीज से इन्कार ? वाह ...!' पिता जी अचभा प्रकट करते। मा ज्यादा जोर नहीं देतीं, तो पिता खीजते।

'इनका तो तकियाकलाम हो गया है — नहीं ! दूध पीना है ? — नहीं ! — केला ? — नहीं।'

मा कहती हैं —'केले और दूध से उसे उलटी हो जाती है।'

'और पढ़ने से ? — क्या मिलती ?'

'लेकिन अब नौकरी जो कर ली है ...'

'ओह, इन्होंने नौकरी कर ली है, पर पैसे चुक गये हैं ?'

'नौकरी कर लेने पर क्या पैसे कभी नहीं चुकते ?' मा दबी जबान से पटी

ताकि भैया न सुन ले।

अच्छा हुआ, भैया बिना सुने ही चला गया। किंतु भैया,के पीछा छुड़ा जाने के साथ ही भैया की,चर्चा अपना पीछा नहीं छुड़ा सकी। चर्चा रोज होता रही, फिर हारकर मा ने कहा — 'मुझे क्यों सुनाते हैं ? मैंने क्या आस लगाई है, कि कमा के भेजे ?'

आस नहीं लगाई, लेकिन पैसा जरूर गला डाला है। तुम्हारी महत्वाकाक्षाए थीं कि मेरी सतान पढ़े '

'सभी की होती हैं '

'मेरी हरगिज नहीं थी

'यह और अच्छा — जभी उसने पढने से इन्कार कर दिया है। और नौकरी करनी पड़ी — घर छोड़ना पड़ा

और फिर मा हट जाती हैं। पिता से बहस मे पड़ना उन्हे हमेशा खलता है, और वह और उद्विग्न हो उठती हैं।

उद्विग्न मैं भी हू। जब से भैया गया है, व्यर्थता का बोध करती इधर उधर डोल रही हू। पिता जी से कुछ कहना चाहती हू, कह नहीं पाती। हा, भैया से चलते समय कहा था — 'देखना, मेरे लिए नौकरी ढूढ देना

'तुम्हारे लिए अभी ? न, ठीक नहीं। वैसा हुआ तो बुला लूगा।

'देखना, खत लिखना।

'अच्छा।

और होशियारी से रहना — और सुनो, रुपये कुछ और मेरे पास हैं '

'नहीं, नहीं ! भैया झुझला आता है, 'इन्हे पास रखो। जरूरत होगी तो मगवा लूगा।

और भैया ने दो तीन बार रुपया मगवाया था। कभी कभार पता पा जाने पर मा को आघात-सा लगता — 'इसके माने हैं ? पता नहीं नौकरी है, या छूट गयी ?

और तब एक दिन डाकिया पिता जी के नाम खत ले आया।

पिताजी को कधे का सहारा देती वह तागे मे बिठला रही थी कि डाकिया पिता जी के हाथ मे खत थमा गया। सोच रही हू कि पिता जी खत पढ़कर शीघ्र ही भैया के आने की सूचना दे। या ऐसा कुछ — किंतु ज्यों ज्यों पिता खत पढ़ते जाते, उनके चेहरे का रग बदलता जाता, और अत मे चेहरा इतना भारी हो गया कि चेहरे का भाव समझना असभव

हो गया।

'क्या है पिता जी ?'

'खुद ही पढ लो। और पिता जी के चेहरे का कौतुक एक कसैली मुस्कान मे परिणत हो गया।

उसके बाद राह भर कोई किसी से बात नहीं कर सका। लौटने पर भी दोनों के बीच मातम मनाती जैसी चुप्पी छाई थी।

मा ने उन्हे आया जानकर जानना चाहा था — 'डॉक्टर ने क्या कहा ?'

किंतु पिता जी ने मा की मुट्ठी मे वह खत थमा दिया था— जो थोडी देर पहले डाकिये ने उन्हे दिया था।

मा ने खत पढ लिया, तो पिता जी ने हास्यास्पद जैसा भाव मुख पर लाते हुए कहा — आज तक सफेद बालों पर किसी ने कीच नहीं उछाला था — अब वह भी हो गया।

और बाद मे तो पिता जी ने स्थिति को इतना तूल दिया, कि मा भी हताश हो आयी।

पिता जी ने इसकी परवाह न करते हुए खत एक खास अदाज मे पढ सुनाया

'जैसाकि आप जानते होंगे, आपका पुत्र अरुण पिछले महीने से मेरे पास रह रहा है। जब वह आया, तो उसके पास पैसा-धेला कुछ न था। खाना भी मेरे साथ खाता था। उसने मुझे बताया कि वह एक अच्छी नौकरी पर है, और अब दक्षिण जा रहा है, किंतु शनिवार की शाम को जब मैं आया, तो पड़ोसियों ने बताया कि वह बिस्तर बैग लेकर चला गया है। आपका पुत्र मेरे पचास रुपये — बर्तन वगैरह लेकर लापता है, इसलिए आपको लिख रहा हू, आप मेरी वह हानि पूरी कर दे।

इस बारे मे खामोश रहने के अर्थ होंगे कि मैं वह रास्ता अख्तियार करू, जो अब तक नहीं किया। यानी मामला पुलिस मे दे दू। पर मुझे आशा है, आप अपने अनुभव और सफेद बालों का खयाल करते हुए मुझे उस चीज पर आमादा न होने देंगे, जो मैं करना नहीं चाहता। आप भी एक भले आदमी की हैसियत से वही करेंगे, जो उचित हो।

इतना ही कहकर पिता जी चुप हुए हों यह नहीं। उन्होंने मेरी ओर सकेत करते हुए कहा था — अभी तो यह जा रही थी, उसके साथ?'

पिता जी का सकेत समझकर एक झुरझुरी-सी मेरे पूरे शरीर मे दौड गयी किंतु

तभी 'टेलीग्राम हैं' — और मैं, झट दौड़कर 'तार' ले लेती हू। फिर तार पढ लेने पर आकर मा को जैसे दिलासा देने लगती हू — अब तो भैया आ ही रहा है। एक ओर की बात जानने से कुछ बात बनती है।

उसी सप्ताह फिर भैया आ गया।

और भैया का आना सुनकर मा दौड़ती आयीं। भैया की थकी, विभात मुद्रा पर जैसे ग्लानि की मोटी तह जमी हुई थी। और ग्लानि की वह तह तब और विकृत-सी होती फूट आयीं, जब मा ने चार तहों मे दबा-कुचला वह खत भैया के सामने धर दिया। खत पढकर भैया स्तब्ध बैठा रहा। फिर एक झेंप की हसी हसकर कहा — अच्छा ! ऐसा ? फिर मुझे पास खड़ा देखकर कहा — 'अच्छा, तू बता अमिया ! तू क्या विजय से शादी कर लेगी ?'

मैं हतप्रभ होती, सिर हिला देती हू — 'नहीं'।

मेरा नकारात्मक उत्तर सुनकर भैया जरा-सा विक्षुब्ध हो आता, मुस्करा देता है — 'वैसे वह सात सौ रुपये महीना कमाता है। रेलवे-डॉक्टर है। तुम्हे मालूम है, सफर का फ्री पास भी मिलता है। तेरी तरह उसे दस-बीस उधार नहीं मागने पड़ते फिर ऐसा कहता हुआ भैया जेब से दस-दस के नोट निकालकर मुझे देता है — 'उसकी मा यहीं रहती हैं। उसने मा को भी लिखा है कि किसी वजह से ही मेरा लिहाज करके उसने मुझे अपने पास रखा था — और अब उसकी मा बीस रुपये वसूल कर ले

किंतु भैया की कोई भी बात नयी न थी। विजय की मा आकर बीस रुपये की जगह पचास रुपये ले जा चुकी थी, किंतु पचास रुपये देकर मा की कमर अब तक टूट चुकी थी।

तब भैया के सामने उस बार मा कम पड़ीं। भैया चला गया, तो मेरी परीक्षाए सिर पर आ गयीं। और परीक्षा-फल के बीच के दो मास बाद मे व्यतीत करने कठिन हो आये।

वैसे देहली जब परीक्षा देने गयी थी, तभी मिल्क कॉलोनी मे नौकरी तय कर ली थी, किंतु पिता लेने आ गये थे, और कहा था

'कुन्नी से वायदा कर आया हू कि तुम्हे लेकर आऊगा।'

और मैं मान गयी थी। मौसी ने पूछा था — 'नौकरी का क्या निश्चित किया ?'

'नतीजा निकलने पर सोचूगी।'

और वह लौट आयी थी, न लौटती तो अच्छा था।

मा के आगे जवाबदेही न करनी पड़ती।

मा ने पूछा था — अरुण क्या काम करता है ?

और उसे ठीक से पता नहीं था कि भैया क्या काम करता है। वह जो भी जानती थी, वही बता दिया — 'कम-से-कम नौकर जरूर हैं कहीं।

और पिता जी तिलमिला आये थे — 'इसे तुम नौकरी कहती हो ?'

'तब किसे कहते हैं नौकरी ? अगर न मिली होती तो आप कहते, नौकरी कोई बेर थोड़े ही है, कि पेड़ तले जाते ही मिल जाये — और अब मिली है, तो कहते हैं — यह भी कोई नौकरी है !'

मैं जैसे हाफने लगती हू — 'आप तो चाहते होंगे, भटक-भटककर किसी तरह वापस आ जाता, तो अच्छा था, क्योंकि उसकी हार पर आप खुश होते, कि देखा आखिर, घर ही तो आना पड़ा।

पिता जी जैसे कुछ कहते-कहते रुक गये और फिर अपने कमरे की ओर मुड़ गये।

सामने है मा — और वह अर्धप्रस्फुटित स्वर मे कह रही हैं — 'घर ! — घर लौटना !

वह आखे मलने लगती हैं, हाथ हटाती हैं, तो लगता है, आखे फिर धुंधली होकर झुक गयी हैं, जैसे मकड़ी का जाला कहीं आखों पर अटका हो !

'घर लौटकर होगा भी क्या ? घर लौटने जैसा घर मे है भी कुछ ?' वह जैसे अपने-आपसे ही कहती जा रही हैं।

'घर लौटने के माने भी क्या हो सकते हैं ?'

मा की आखों का प्रश्नचिह्न पढ़कर कह पड़ती हू — 'तब ?'

'तब यही, कि घर लौटने का सवाल उठाना ही मूर्खता है। मा की आखों मे उत्ताप जैसा कुछ उमड़ आता है, और स्वर भी उत्तप्त हो उठता है — 'घर क्या है ? जहा धधा है, वहीं घर है।

मा के उत्तप्त स्वर पर मुझमे खीज-सी भर आती है। मैं कहती हू — और, अब उसी धधे मे लगना भी तो आपको अच्छा नहीं लग रहा।

अच्छा हुआ, उस दिन मा ने मेरा उत्तप्त स्वर सुना नहीं। अब सोचती हू, तो अपनी खीज

पर अपने को ही कोसता हुआ पाती हू। यह भी कि चुभती बात यदा कदा क्यों कह डालती हू ?)यह नहीं कि जानती न होऊ कि मा को क्या भला, क्या बुरा लगता है, किंतु मा ही सबसे पहले हताश होती हैं, और पिता जी को कहने को मिलता है। फिर वह सुन नहीं सकतीं और घुलती हैं। मैं तब तीखी बात कह देती हू कि शायद मा दब जाये, भूल जाये, या फुसल जाये।

किंतु मा को बहलाना आसान नहीं। हा, दीदी कभी-कभी सभाल लेती थीं, और मैं तब भी प्रतिवाद करती थी — 'मा की बाते मुझे कुछ समझ मे नहीं आतीं।

दीदी कभी-कभी स्तब्ध बैठी देखती रहतीं। फिर कहतीं — 'ऐसा नहीं है। मा ने ठीक ही सोचा है। अरुण डॉक्टरी कर लेगा, तो घर बन जायेगा। अच्छी लड़की घर मे आ जायेगी — नहीं तो लड़के भटक जाते हैं। जिंदगी मे घर नहीं बना पाते।

मुझे अवसर मिल गया था — 'दीदी, आपको अच्छा लड़का मिल गया था, पर घर. बना ? मैं जबान दात तले दाब लेती हू कि कहना नहीं चाहिए था, पर अब ? मैंने दीदी को उनके खंडित सुहाग की याद दिला दी थी, किंतु साथ ही दीदी के चुनाव पर भी मुझे खेद हो आया। दीदी ने जान-बूझकर कि 'जीजा' को क्षय' है, क्यों उनसे विवाह किया ?

'उस समय क्या मा ने आपको मना नहीं किया था ?

दीदी शायद दूर देख रही थीं, कहा — 'यही तो भूल हुई। और बाद मे मैंने भूल मान ली थी

'किंतु बाद मे भूल मानने के माने ?'

और अब कल से ही सोच रही हू कि दीदी की तरह कहीं भूल तो नहीं कर रही ? बाद मे भूल मानने के माने क्या होंगे ? किंतु मैं दीदी जैसा दु ख मा के लिए नहीं छोड़े जा रही। दीदी का दुर्भाग्य मा के लिए दुर्भाग्य बना, किंतु मैं ऐसे किन्हीं बधनों मे बधी नहीं हू। और फिर कल मा के कानों से भी निकाल चुकी हू। और सुनकर मा जैसे सोते से जगी हो — 'क्या दिल्ली जाओगी ? नौकरी के लिए ?

शायद पिता जी ने सुन लिया था। वह भी आ गये थे।

'एक ने नौकरी करके पाट भर दिये हैं अब दूसरे की बारी है ?

आप हमेशा ऐसी बाते करके ही हौसला पस्त कर देते हो, पिता जी।

'खैर. ' मा मेरे तीखे स्वर को बीच मे काटकर शायद पिता की धारणा स्पष्ट करने

का प्रयास करती हैं। 'उनका मतलब है — जैसाकि अरुण चला रहा है — उसे वह नौकरी नहीं मानते

'लेकिन न मानने का मतलब ?

मा फिर मेरी उत्तेजना को शात करने के भाव से कहती हैं — 'मतलब कि आरजी धधा है, वह कुछ भी हो सकता है।

पिता जी दूर ही से सुन रहे थे — अब पास आकर उन्होंने मेरे कधे पर धीरे से हाथ धर दिया। फिर मेरे दोनों कधों को बडे धीरज से दबाते हुए — मुझे गभीर लहजे मे पूरा एहसास हो सके, ऐसे नाटकीय स्वर मे — समझाकर बताया — 'आरजी धधे के माने कुलीगीरी, चपरासीगीरी, मुशीगीरी, फाकागीरी और उठाईगीरी।

मैं सिहरकर कधे हटा लेती हू। वैसे पिता जी खुद ही कधे ढीले करते हुए 'बडी शकर प्रदर्शन' मुद्रा मे हट गये थे।

'चलो, कुछ ही सही। मैं फिर अपनी जगह पर आ जाती हू — 'आप इसे कुछ मानते हैं ? और फिर उसके अपने लिए तो यह ठीक ही है कि वह इस घर से छूट गया।

पिता मुझे दिल्ली वाली मौसी के यहा रहने की याद दिलाते हैं। 'छूट तो तुम भी गयी थीं। और वह छूटना गलत भी न था। — और छूटे रहने मे ही बल्कि ज्यादा सुख था, क्योंकि वह कुछ तो था।

मैं सिर्फ देखती रही थी कि पिता जी और क्या कहते हैं — 'पर वह सिर्फ अपने लिए। पूरा नहीं तो अधूरा सुख। वह भी नहीं तो बेफिक्री।'

'चलिए, यही सही — किंतु इससे भी क्या इगित हुआ ?

'हुआ तो किसी से भी कुछ नहीं — वह पत्र आया, क्या हुआ ? तुम्हारी दीदी नहीं रहीं, क्या हुआ ? तुम भी

पिता जी बहुत कुछ कह गये थे, और मा विक्षिप्त हुई थीं। पिता के जाने के बाद मा को शात करने का उपक्रम-सा कुछ किया था, तब मा ने कहा था — 'बेफिक्री जिसे तुम समझते हो, वह सिर्फ पीठ दिये रहना ही है। वैसे इस उमर मे, इतना भी गनीमत होता है — होना चाहिए भी — पर क्योंकि समाज ऐसा होने को अच्छा नहीं कहता। अलग-अलग बिखरकर हम रह नहीं सकते — सुगठित रूप को ही समाज परिवार मानता है ..

जाने ऐसा क्या है, कि मा की दलीलें मुझे हास्यास्पद लगती हैं, या कि विक्षिप्त-मन

समाज पर रोष हो आता है।

'शायद समाज को सुगठित सेवा, सुगठित रस अथवा यश भी चाहिए '

लगता है, बहुत धीरे कहे हुए शब्द भी मा ने सुन लिये थे। तभी कहा था — 'और ऐसा यश सुख-सतान ही दे सकती है और. और जब अरुण जानता था, कि पिता अब खुद कुछ नहीं कर सकते जिंदगी भर जो कर सकते थे वह भी नहीं किया न कभी सुझाव दिया, न सहयोग — उल्टा व्यग कसे फिर भी अरुण समझ न सका कि खुद वह क्या भूल कर गया लेकिन नहीं, जैसा पिता था — वैसा ही पुत्र निकला ' मा रोने लगती हैं। रोते-रोते ही कहती हैं — 'डरपोक और भोंदू। अपनी तरह का वार करने वाला '

जानती हू कि मा का रोना केवल पुत्र के भोंदूपन को लेकर नहीं, पुत्र के बनवासी हो जाने का भी है।

हालाकि अपने भोंदूपन मे पुत्र मा का चार हजार नकद और गहना भी डाल चुका है, और जिस मा ने इतने का कभी नाम नहीं लिया वही वक्त पर अब पुत्र का चेहरा देखने से भी लाचार है।

'पर क्या किया जा सकता है।' मैंने मा को समझाने का प्रयत्न किया था — 'लोग क्या चार चार, पाच-पाच साल तक पढने के बाद भी फेल नहीं हो जाते ?

किंतु मा को जितना ही समझाना चाहती हू, मा के आसू उतने ही वेग से बहने लगते हैं और।

मैं कहती हू — 'यह भी क्या अच्छा नहीं हुआ कि वह फेल हो गया ? और जो पास हो जाता, तो क्या हम फाइनल का खर्च उठा सकते ?

मा अब भी जार जार रो रही हैं, और झिल्लीदार आखों से अदृश्य मे देख रही हैं।

'फिर. इस तरह क्या पढाई हो भी सकती है ? घर की हालत भीतर ही भीतर कहा पहुच गयी है, वह क्या जान नहीं रहा था ? क्या समझता न था कि इन हालों मे कितने दिन जिया जा सकता है ?

'यही तो ' कहती मा खुलकर रो देती हैं, क्योंकि इस बात को मा और भी अच्छी तरह जानती हैं।

मैं मा को बहलाने की अतिम कोशिश करती हू — 'और वह फिजिक्स मे आना चाहता था, जो आपने माना नहीं, कहा नहीं कि डॉक्टरी करना बेहतर है। और वह

आपको अपनी मुश्किलें समझा न सका '

'समझा नहीं सका ?' मा रोते-रोते कहती हैं — ऐसा ही दूधमुहा बच्चा था। कह नहीं सकता था   मा एक चुप आह खींचकर सिर हिलाने लगती हैं।

'खैर, जो भी है — अब वह सुखी हो गया है।

'तुम इसे सुखी होना कहती हो ?'

मा नये सिरे से रोने लगीं — और शायद रात-भर रोती रहीं — और आज सुबह तक मा की आखे लाल थीं। पपोटे सूज रहे थे। देखकर पिता जी ने कहा था — 'तुम्हे क्यों चिढ मची है ? मिल्क-कॉलोनी वाली नौकरी उसके लिए अच्छी है। अपने घर के उपयुक्त भी। कम-से-कम देहली की बसों का किराया, धोबी की धुलाई, या कभी-कभार का बूट पालिश वगैरह चल जायेगा।   फिर घर में रहने से तो अच्छा है — घर से छूटना भी तो एक उपलब्धि है। और डेढ सौ रुपये महीने की बचत तुम्हारी भी हुई '

मा बडबडाती रहीं — 'डेढ सौ रुपया बच जाना ही सब है ? — बेटी का बोझ उतारने का मोल ? खूब सफल हू — एक-एक करके सबको घर से निकालने में सफल हो रही हू।

और मा का रोना नये सिरे से शुरू हो जाता है। मैं और मा दोनों मिलकर रोने लगती हैं। मैं रोती जाती हू और सोचती हू, मा को पराजय की आग से कोई नहीं बचा सका। महत्वाकाक्षाओं का मोह वह किसी भी तरह तोड नहीं सकीं। पर वे महत्वाकाक्षाएं भीतर ही-भीतर अब उन्हे तोड रही हैं।

कसमसाते सम्भालते बीच मे मन हुआ है, जा के मा का हाथ बटाऊ, किन्तु मा रसोईघर में डिब्बों में कई तरह की चीजे भर रही हैं। मैं उनके माथ पर उनकी चिंता का रेखाओं को गिनकर लौटाना चाहती हू कि मा वहीं से कहती हैं — और ... अगर वह अब भी घटे, तो कहना — इम्तिहान दे आते

'लेकिन इसका इलाज क्या है ?' मैं बुदबुदाते स्वर में कहती हू — अगर वह फिर फेल हो गया ? [illegible] तो इसने ऊचे सपने बसे हैं '

और एक पराजय पाने वाला बच्चा, जो [illegible] से सीखने के [illegible] अभी ढग से शुरू भी न था, उसे याद करने लगी हू।

मां [illegible] ही रसोई में लगी है — शायद कुन्नी का टिफिन तैयार कर रही है। मैं कुन्नी का [illegible] उठा लेती हू — 'मा का रोना कब [illegible]'

'टन ! घड़ी म एक बजा है।

मा सूखे हुए कपड इक्ट्ठे करके उन पर लोहा फेरने लगती हैं। मुझसे देखा नहीं जाता, पर मना करने का भी बल मुझम नहीं है। कुन्नी के खाने का डिब्बा लगाते समय सोच रही ■ यह आखिरी खाना लगा रही हू। कल से यह काम भी मा को करना पड़ेगा। जीजा मरकर मा पर अन्याय कर गयीं, हम जीकर अन्याय किये जा रहे हैं और तब मुझमे मरने की इच्छा बलवती हो जाती है।

मा मुरमुरे रेवडियों या दूसरी ऐसी चीजों की पोटली मेरी ओर बढ़ा देती हैं — 'यह रख ले, इनम गुड की सेम हैं।

मा के बढे हुए हाथ से वह पोटली-सी पकड लेती सोचती हू — 'मा का याद है — खाने के बा" सेम खाती हू — गुड भी — और मा को याद आता भी रहेगा — बहुत कुछ । फिर सहसा एक और खयाल आता है कि मुझम तो मरने की इच्छा भी बलवती हो सकती है, पर मा तो मरने की इच्छा भी नहीं करतीं। क्या मा न हों, तो मैं कुन्नी की परवरिश कर सकूगी?

और मुझे लगा कि घर छोड़कर, असल मे, हमने मा को छुटकारा नहीं दिया, छुटकारा हमने अपने को ही दिया है। और मेरे मन मे हुआ था कि यहीं रहकर ही नौकरी कर लू। घर से स्कूल तक जाते हुए — राह भर यही सोचती रही हू कि बाद की पढ़ाई भी यहीं हो सकती है, किंतु जाने क्यो यहा रहकर कुछ भी करने का सोचते हुए मन मे अतर्द्वंद्व जैसा कुछ उभरने लगता है, और यहीं रहने के सवाल पर मन कतई नहीं जमता।

सामने से कुन्नी भागती हुई आती है — आज देर कर दी।

'क्यों ? मैं कुन्नी का मुख हाथा म भर लती हू।

'जरूर तुम्हारा घटा जल्दी बज गया होगा। और हम लोग रोज वाली शीलसपाटी पर जाकर बैठ जाते हैं। रोज की तरह ही छोटे छोटे झुडों मे बैठकर लड़किया अपने टिफन बॉक्स अपन सामने खोले मुह चला रही हैं। कुछ लड़किया पेड़-तले बिछी बचों पर बैठी हैं, कुछ छोटे बच्चे कतार बाध फिसलपट्टी की सीढ़िया चढ रहे हैं। दो एक बच्चे मेरी गो राउड को रोकने के प्रयास म हाथ बढ़ाकर घूमते जाते — झूले पर उछलकर सवार हो जाते हैं।

आज पार्क वाली बेच पर बैठते हैं। कुन्नी के स्वर पर मैं चौंक जाती हू — 'क्या ? नहीं नहीं, रोज वाली जगह ही ठीक है।

मैं टिफन-बॉक्स खोलने लगती हू — पिछाड़ी से आवाज आती है — 'क्यों ? क्यों ?

आटी — आप चलो, यहा के मोर दिखाऊ आपको। सुनो, सुनो। आपने 'क्यों' की आवाज सुनी ?

'सुनी। पर अभी तुम खाना खाओ, और कभी देख लेंगे मोर।'

कुन्नी खाने लगती है — तो धीरे से पूछती हू —'तुम्हारी परीक्षाए कब हैं ?

'दिसबर मे — क्यों ?

'हा, तब तक मैं आ जाऊगी।

और मैं कुन्नी को धीरे धीरे अपने जाने का ब्यौरा समझाने लगती हू। इसके अतिरिक्त अपनी लहर म और क्या क्या समझाती जा रही हू, इसका ज्ञान नहीं, पर बीच-बीच मे छिपाकर आसू पोंछ लेती हू।

और हा, तुम अम्मी का खूब खयाल रखना। उनसे झगड़ा न करना।

अच्छा ! कुन्नी सिर हिलाकर हामी भरती है। मैं टिफन-बॉक्स वापस झोले मे धरने लगती हू।

तभी कुन्नी अचकचाये स्वर मे कह पड़ती है — 'पर आप जाओ ही नहीं। हमारे पास ही रह जाओ !

'यह कैसे हो सकता है ? मैं जैसे हड़बड़ा जाती हू। फिर हवा मे उड़ आते कुन्नी के बालों को मैं कानों पर समेट लेती हू।

हम वापस चलने लगते हैं, तो कुन्नी मुझे गेट तक पहुचाने आती है। गेट पर रुककर मैं हाथ उठा देती हू, कुन्नी भी 'बाई' करती है, किंतु फिर पास आ जाती है।

'पर आटी, दिल्ली मे आप रहोगी किसके पास ?

'क्यों ? मौसी जी हैं — बोर्डिंग हाउस भी है।

मैं ये भी कहना चाहती थी कि तुम इन बातों की सोच मत करो, कुन्नी, किंतु कुन्नी ही बोल पड़ी — 'ममी कहती थीं, बोर्डिंग हाउस अच्छा होता है, पर मेरा कभी भी मन नहीं लगता था। आप कभी भी वहा मत रहना।

अच्छा — नहीं रहूगी।

स्कूल का घटा बजने लगता है, और फिर मैं हाथ उठा देती हू, कुन्नी थोड़ी देर वहीं खड़ी रहती है।

फिर मेरी ओर भाग आती है। उसके भागने का ढग ऐसा है कि मुझे महसूस होता

है — जैसे मेरी आत्मा को किसी ने कसकर मुट्ठी मे भींच लिया है। कुन्नी आकर मेरी टांगों से चिपक जाती है।

'आप क्या आज की गाड़ी से ही जा रही हैं ?

हा, कुन्नी को पुचकारती हू — किंतु, एडमिशन के बाद — छुट्टिया होंगी और मैं चली आऊगी।

कुन्नी का मन जैसे इस पर जमता नहीं, वह कुछ और कहना चाहती है, पर मैं उसका मुह गेट की ओर मोड देती हू — 'जाओ, तुम्हारी क्लास लाइन मे लग रही है।

कुन्नी दूसरी लड़कियों के साथ भागने लगती है।

घर लौटकर मा को छुट पुट कामों मे व्यस्त पाती हू — सूखी मिर्चें या धनिया पीस कर सिलबट्टा धोकर अलग रख रही हैं।

मुझे एक नज़र देख लिया कि मैं आयी हू, किंतु रोज की तरह पूछा नहीं। मैं चुपचाप टिफन-बॉक्स धोने लगती हू और फिर उसे यथास्थान धर भैया के कमरे मे चली जाती हू।

तब से अब तक इसी एकांत कोने म दुबकी हू। खिड़की के बाहर जो सुनसान सड़क क्लब की ओर जाती है — उस पर एक दरिद्र युवती लपकती जा रही है। उसका फटा आचल हवा मे फरफराता फट् फट् उड रहा है, किंतु उसे फटे आचल की मानो जरा भी परवाह नहीं। फटे आचल को बार बार वक्ष से लपेटती जा रही है। उसे एक भी गति की सुधि नहीं, अनुभूति नहीं, बस बेसुध होती जा रही है — निश्चित मन। सोचती हू — सभी क्यों नहीं इस दरिद्र बाला जैसे बेसुध अथवा निश्चित हो जाते ? और क्यों छोटी छोटी बातों पर कुढते हैं ? क्या मैं बातों पर कुढ़ना छोड नहीं सकती ? — यों नहीं चल सकती कि मुझे एक भी गति की अनुभूति न रहे, सुधि न रहे ?

किंतु अपने को ही उत्तर देती हू कि — अनुभूतिविहीन नहीं हो सकती। और मा को अंतिम सूचना देने चल पडती हू।

कमरे के भीतर जो कमरा है, उसी से जुड़ा है सहन या बरामदा यहीं से झाककर देखती हू — मा खाट पर बैठी हैं, उनके आगे बहुत-सा बिखराव है। कपडे और ऊने भी — हा, मा शायद कुन्नी के गरम मोजों मे पैबद लगा रही हैं, या उनमे नयी एडिया फिट कर रही हैं। मा से विदा लेने आयी हू, किंतु सामने पडने का साहस नहीं होता, इसलिए भी कि मेरा मुह मा के आसू धुले मुख जैसा पवित्र नहीं।

मैं फिर भैया के कमरे मे वापस आ जाती हू। भैया के पैड मे से एक पन्ना खींचती

हू। एक महीन 'र्की' जैसी आवाज पन्ने के पैड से अलग होने पर होती है — मैं भैया के कलमदान के खोल से कलम खींचकर पन्ने पर कुछ लिखती हू, और उसे मोड़कर भैया की पुस्तकों के बीच, जो टेबल बुक शेल्फ मे जुड़ी है, रख देती हू। मा सुबह रोज एक बार यहा आती हैं, सब कुछ को ठीक करके चली जाती हैं — बस, आते ही — अम्मी पा जायगी ।

नहीं, भैया की किताबों म नहीं — मा का मन

फिर आगन की ओर वापस आती हू — और मा का सूई-डोर वाला बक्सा देख लेती हू। चिट्ठी उसी पर धर देती हू। हा, यहा से आसानी से पढ़ा जायेगा — झुककर पढ़ती हू — 'मा, मैं जा रही हू, तुम समझ लेना ' सोच रही हू — मा क्या समझेगी ? मैंने मा को समझाना चाहा था ?

या कि मैं भी विलुप्त जाये जा रही हू ?

मुझे एक भी गति की सुधि नहीं ? अनुभूति नहीं ?

युद्ध और दगाबाज इतिहास

बात इतनी थी कि वह हार गयी थी, और इस हार से छीजकर उसने जिंदगी की रंगशाला का पर्दा खींच दिया था, पर पर्दा पूरी तरह खिंचा नहीं, जैसे एक पट परिवर्तन होकर रह गया हो। और यह पट परिवर्तन हुआ जब आधी रात का समय था, और आग की लपटों सदृश्य ऊची सी उठती कराह। अतः लोग-बाग नींद से जगकर भागे चले आये थे। पर जब तक लोग इकट्ठे हों, दीवार फलांद आयें, तब तक शांति पर स्पष्ट हो गया था कि आखिर कब से वह मोक्ष-द्वार टटोलती आ रही थी। टटोल रही थी पर घर या बाहर कहीं कोई उसे अपनी बात का हामी मिला नहीं था। कुछ पूछने पर एक ही जवाब मिलता कि 'गृहस्थ जीवन मे तो सदाचारपूर्वक रहना ही मुक्ति, मोक्ष या सन्यास है।

यों सदाचारी जीवन की इस पद्धति ने उसे सर्वप्रथम अल्पायु मे ही झकझोरा था। मात्र सत्रह वर्ष की थी तब। मानसिक रूप से अपरिपक्व, पर एक मा भी, कि प्रौढ पति के सान्निध्य मे रहकर भी जो अपने बच्चे को अस्पताल की मेज पर आतों मे पानी चढ़ाये जाने के लिए पड़ा देख रही है। सूखकर काटा हुए दस मास के बच्चे की लोथ! पानी की पिचकारी सरीखी टट्टियों से निचुड़ जाती लोथ। उस दिन भी देखी नहीं गयी थी, मा की आतों का गुच्छा सी बनी नन्ही देह! चाहिए थी शांति को शांति! मोक्ष!! मोक्ष, पर आसानी से नहीं मिलता, और साधन जुटाने पड़ते हैं, जैसेकि दंगा फसाद या कोई ड्रामाई दृश्य ही, कि कुछ तमाशाई ही जुट जाये। इससे पूर्व मुक्ति सभव नहीं। क्योंकि लोकमत की अपेक्षा रहती है, और लोगों के प्रत्यक्षदर्शी होने की भी।

हा, यहा अब आधी रात के बावजूद लोग जुट चुके थे। यहा तक कि लस्त-पस्त एक-एक बच्चा तक बिस्तर छोड़कर कॉलोनी के स्क्वेयर मे जमा हो चुका था। और एक-दूसरे को धकेलकर सब धू-धू करती लपटों तक पहुचना चाहते थे। पर जिन्होंने लपटे देखी थीं,

वह आग बुझाने की कार्यवाही मे व्यस्त ठीक से शाति के हुलिये का जायजा तक न ले सके। अलबत्ता बाद वालों ने देखा था — समाधिस्थ-सी बैठी बत्तीस-इक्तीस वर्षीया शाति को। दोनों कुहनिया दोनों जाघों के बीच। दोनों हाथ आश्चर्यमय नमस्कार की मुद्रा मे ठोडी को छूते हुए। बिना हुकारे — बिना कराहे — मुटर मुटर ताकती शाति।

एकत्र भीड को शाति का ऐसा एकटक ताकते जाना जरा नहीं भाया। कारण कि शाति की दशा जरा भी दयनीय प्रतीत नहीं हो रही थी। यहा तक कि बच्चों और बूढ़ों को भी वैसा विस्मित करने जैसा कुछ नहीं दिखा शाति मे।

आक्रांत करने जैसा इसलिए भी कुछ शेष बचा नहीं था कि शाति के प्राण अभी प्रतीक्षित थे। किसी को एक बार देखने को। शायद अपने हसते-खेलते बच्चों को। दो प्यारे प्यारे फूलों को। इसलिए भी कि इस बीच उस पर पानी तो फेका जा ही चुका था, कपडे भी फेंके गये थे, और जली हुई साडी तक खींच ली गयी थी और फेंकी गयी थी कमीज, जिसे उसने वक्ष से चिपका लिया था। और फिर एक ओढनी, जो अधजले, चिपचिपाये बालों पर ओढा दी गयी थी और पूछा जा रहा था — 'क्यों शाति, कैसी हो?'

पर शाति निरुत्तर! बस, टुकुर टुकुर ताकती सी। जैसे सिर को कोई हथौडे से पीट रहा हो। पूछता हुआ कि सुकुमार बच्चों को छोडकरबेगाने देश जाना कैसा लगेगा — तुम्हें शाति?

कैसे हुआ, यह भी ठीक से याद नहीं आ रहा उसे। यों भी जब वह स्कूल मे इतिहास पढ़ती थी, तो वह नायकों के नाम हार जीत के स्थान, तिथिया आदि महज रट लेती थी। इतिहास तो उसने बाद मे जाना, लार्ड क्लाइव की भूमिका पढ़कर, पलासी का युद्ध पढ़कर, या पानीपत के युद्ध मे इब्राहिम लोदी को अंग्रेजों से लोहा लेते देखकर। इतने पर भी इतिहास की सच्चाई उसे तिथियों तक ही सीमित लगती रही। जैसे इतिहास को नायक, महान व्यक्ति या किसी धर्मपथी ने अपने अनुकूल गढ़वा लिया हो। तभी तो इतिहास मे आम आदमी का जिक्र तो दूर, सच्चाई की परछाईं तक नहीं होती। हो भी कैसे? सच्चाई तो अनुभव के स्तर पर पहुचकर ही आकी जा सकती है — वर्षों की पुख्ता दीवार को सेध लगाकर ढाने के बाद।

और शाति ने जो कदम अब उठाया था, वह वर्षों की दीवार को ढाने या उलाघने जैसा ही था। फिर भी उसके हाथ मे कि सहसा छोटे ही पड गये। वह इस तरह कि विवाहित जीवन के चौदह वर्षों को झुठलाना उसे बूते के बाहर लगा था, और मुह से

बरबस एक कराह-सी निकल गयी।

जैसेकि उसके सीने को कोई रासायनिक तार से भींच-भींचकर बेदम किये दे रहा हो! शाति! तू बच्चों को ननिहाल ले ही क्यों गयी थी?'

पर उन्हे ननिहाल छोड आने के पीछे भी एक इतिहास था। एक आम आदमी की झक! बददिमागी!

हुआ यह था कि आज सवेर स्कूल जाते वक्त उसके गोल मटोल रोहित की ड्राइंग-फाइल घर ही छूट गयी थी। शाति ने देखा, तो अविनाश से कहा कि 'ड्राइंग मास्टर को फोन कर दो ताकि सजा न दे उसे।

फोन किया गया, पर फोन शायद मास्टर तक नहीं पहुचा, फिर भी मोहित बिना सजा पाये ही घर वापस आया था, पर तब तक अविनाश दो तीन पैग चढाकर शाति को बकझक चुका था। नशा अब कुछ शराब का, तो कुछ बच्चे से हमदर्दी भरे स्नेह के भावातिरेक का, अविनाश पर इस हद तक तारी हो चुका था कि बच्चे की पीठ ठोंकते हुए अपने अहसास के बलबले को थोड़ा उछाल दिया उसने। खुमारी अब तक और बढ चुकी थी। सो कहा उसने — 'तुम्हारी ड्राइंग-बुक मैं तो स्कूल ही पहुचा आता, पर इस तुम्हारी जाहिल मा ने ही मना कर दिया कि सिर्फ फोन कर दो। कमीनी कहीं की! मरवा दिया बच्चे को।

बस, इस बहस ने ही तब पूरा दिन बिगाड दिया था। फिक्रों की अदला बदली, उससे पैदा द्वद्व और इल्जाम-प्रति-इल्जाम ने एक कटु युद्ध-इतिहास के पन्ने खोल दिये थे। और फिर पन्नों मे जुडते गये तनातनी के तलाफ्फुज हिकारत के पैबद — और घूसों की मार। गाली गलौज और आखिर मे शाति सह ही नहीं सकी। कहा — 'यह शराब-सिगरेट की ही बरबादी है कि पीकर पस्त पड़ा रहता है यह आदमी घर पर, ताकि घर नष्ट-नीड बन जाय।

अविनाश उस वक्त ट्राजिस्टर पर — 'जवा है मोहब्बत' — नूरजहान का बेहतरीन तराना सुन रहा था कि फिक्रा सुनते ही उछलकर बैठक से बाहर आ गया और पूरे जोर से चीखा — 'नष्ट-नीड की खोज करने वाली तुम्हीं तो थीं न कि शराब से ढेर हो गया था वह नीड। तुम्हारे कुकरम से तो नहीं?

'कुकरम — या खोज करने वाली कहा हू मैं? मैं तो जीने वाली हू। तिल-तिल करके

जी रही हू — शराब की नाली म पडे हुए के साथ। जो सोचता है, नष्ट नीड के लिए त्रिकोण की जरूरत होती है। और अगर तुम्हे मौका मिले, तो त्रिकोण बनाने मे भी पीछे रहोगे ? या पीछे रहे हो कभी ?'

बस, इस एक जुमले ने ही आग पर घी का काम किया था, और अब शाति के बाल अविनाश के हाथ म थे। फिर लाते और घूसे। तब शाति पर भी भवानी सवार हो गयी। कहा — 'लो, मार डालो, एकबारगी ही अब शाति सीना तानकर खडी थी।

अविनाश ने आव देखा न ताव, उसे गले से पकड लिया, गला छूट गया तो उसका मुह नोच लिया।

नाखूनों की चीर फाड स शाति का होंठ कटकर नीचे लटक गया। वह चकराकर गिर पडी। होश आने पर उसे खून म चिलक-सी महसूस हुई। शीशे मे जाकर देखा तो मास का लोथडा दातों तक लटक आया था। फिर जब खून रिसना बन्द नहीं हुआ, तो कहा— 'इस वहशी को नाखून भी बाघ जैसे ही चाहिए। फुरसत नहीं नाखून काटने की भी। बस, फुरसत है दिन दहाडे बोतले चढाने की।' बक-बक करती वह रोती भी गयी और सीढ़िया भी उतरती गयी।

नीचे पहुचकर सोचा, वह जरूर पुलिस को इत्तिला दे देगी। नहीं, वह खुद थाने जायेगी — इस आदमी की कारगुजारी लिखाने। लेकिन उसे याद आया कि पुलिस तो अविनाश के लिए पिछले साल भी बुलायी जा चुकी है, अविनाश ही के भाई के द्वारा, और बयान भी लिये गये थे कि 'यह पीकर मार पीट करता है। — बीवी को पिस्तौल दिखाता है' पर वही चुप रही थी, तो उस बार पिस्तौल जब्त होते-होते बची थी। नहीं, अब भी शाति को चुप ही रहना होगा। कि बेकार जो अविनाश पुलिस की आखों मे आ गया, तो अब जो दो पैसे कमाता है, उससे भी जायेगा। तब ? क्या करे शाति ? श्रीमती वोहरा से जा बताये ? पर उससे भी क्या होगा — सिवा बदनामी के ? खुद अपने मुह अपने खाविंद की बदनामी करे ? वह भी दूसरों के आगे ? नहीं, नहीं करेगी वह। उलटे पैर सीढिया चढ़ आयी शाति। वापस आने पर पाया कि वह नशे की झोंक म बच्चों को खदेड रहा है। कहता है कि 'चलो, हम पिक्चर देखेगे। इसको सडने दो यहीं।

बच्चों ने पलके उठाकर मा को देखा, फिर पलके गिरा दीं।

वह तमककर बोली — 'अपने उद्देश्यों की आड मे बच्चों को मत घसीटा करो। शाति ने बच्चों को अपने पास खींचते हुए फिर कहा — 'नहीं जायेगे ये तुम्हारे साथ। मैं ले जाऊगी उन्हे, जहा चाहूगी।

बच्चों को खुद से सटाते हुए पता नहीं क्या-क्या याद आता रहा उसे कि मन कट कटकर टुकडे होता रहा। या कि उबल-उबलकर जिंदगी देने वाले के निकट शिकायत करता उसका मन। शायद कहा हो कि देने वाले ने क्यों औरत का जन्म दिया उसे?

देर तक मुकद्दर पर आसू बहाने के बाद अविनाश के उद्देश्य से बैठक मे झाका, तो वह दोनों टांगे फैलाये, पायजामा दोनों घुटनों से ऊपर खींचे, कुहनी पर औंधे मुह चित पडा मिला।

बच्चों की कॉपी-किताब सभालते बीच पाया कि छोटी मन्नो तो खाते-खाते कुर्सी पर ही लुढक गयी है।

ज्यों त्यों बच्चों को साथ लिया और अविनाश को चित पडा छोडकर वह सीढ़िया उतर गयी।

और, अब ?

कुछ लोगों ने एहतियातन उसे बैठक मे पहुचा दिया। विसिनिटी की महिलाए भी किवाड के इर्द-गिर्द सरक गयीं। उनमे से एक ने बच्चों के लिए उत्सुकता जताई, "रोहित और मन्नो नहीं दिख रहे?"

"यहीं स्क्वेयर ही मे कोई ले गया होगा।"

"कहा?" चोपडा परिवार की महिला पास बढ आयी, "झगडे के बाद मा ही साथ स्कूटर मे ले गयी थीं दोनों को ।"

"और अविनाश?"

"वह गया था बाद मे। जब घर मे कोई नहीं था। किसी ने सिनेमा की ओर जाते देखा था उसे।"

"जब घर मे बाय-बाय हो, तो वियाबान मे मर्द क्या करेगा?

आप कह क्या रही हैं कि बाय-बाय शाति की वजह से है? — अरे, वह तो इसी बात पर रोज-रोज कुढती रही कि 'घर मे आते ही जैसा रग तुम्हारा देखेगे बच्चे, अरे, वही रग तो पकडेंगे वे। पढे लिखेंगे नहीं, तो तुम्हारे जैसा ही तो बनेंगे। आवारा! और मान लो, बेटा तुम्हारा किसी तरह पढ-लिख भी गया, तो ब्याह के बाद ही बीवी को पीटेगा — तुम्हारी तरह ।'"

"अच्छा छोडो," कहती पहले वाली महिला बढ आयी "बताओ, कोई गया है बुलाने

उसे ?

"किसे ? अविनाश को ? श्रीमती वोहरा गुगुआईं, 'कोई गया भी होगा, तो कहा ढूंढेगा ? कुछ पता हो कि किस सिनेमा हॉल मे है ?

'यहीं पास वाले मे है। क्या नाम है, जहा 'प्यार की मजिल' लगी है ?

'चुप-चुप ! देखो, उसे ला रहे हैं ! कोई बाहर से बताने आया।

महिलाए वापस सहन के दरवाजे पर जा पहुचीं। दो-चार लोगों ने अविनाश को थाम रखा था, जिनसे हाथ छुड़ाता वह सहन पार करके अब शाति के सामने था।

'क्या सचमुच शाति ? उससे और कहा नहीं गया। क्योंकि जो था, उसने उसका नशा हिरन कर दिया था और वह पछाड़ खाता लगभग शाति पर गिर ही गया था कि वोहरा ने थाम लिया, तो वह फूट फूटकर रोने लगा।

'यह क्या हो गया ?

सब बारी-बारी से ढाढस बधाने लगे। 'यह वक्त रोने का नहीं। डॉक्टर बुलाओ!

किसी ने उसे रोककर कहा, 'डॉक्टर बुला लिया है।

लोग अब डॉक्टर की सूरत तलाशने लगे। डॉक्टर सचमुच सहन मे था। इकट्ठे हुए लोगों को पीछे हटाते हुए कुछ लोग डॉक्टर के लिए रास्ता बनाने लगे। भीड चीरकर डॉक्टर भीतर गया, तो लोग भी भीतर की ओर उमडे।

अब शाति के हाथ अलग कर रहा था डॉक्टर। अब चेहरा दिख रहा था। पूछा, 'यह — कैसे कटा ? होंठ ?"

शाति हठात चेत-सी गयी।

महिलाओं मे फुसुर फुसुर होने लगी, 'डर गयी बेचारी!

'लोगों को हटाइए " डॉक्टर ने आदेश दिया।

शाति अप्रतिम-सी देखती रही।

डॉक्टर मुआयना करता रहा। निचला धड जल चुका था। चेहरा धुआसा। बाहों की उधड़ी हुई खाल खिंच जाने से नीचे की नगी चमडी दिखने लगी थी। शाति किंतु वैसी ही शिशाग्र! इतना की शिशाग्र! अविनाश भी बुत-सा खडा सोच रहा था, काश, कि आज रात घर न छोड़ता वह, तो यह सब कुछ होता ही नहीं! या गया भी था तो रसोई मे ताला ही डाल जाता। यह मिट्टी का तेल ही न जुटा पाती। लेकिन यह तुम अब सोच रहे हो ? जैसेकि जानते थे तुम, वह ऐसा करेगी ? और अब रहा ही क्या अब तो नगे हो ही गये

हो।

और कि 'आदमी अविनाश, तुम हो एक ही बेहया।' और उसे याद आया कि बेहया उसे शांति ने बताया था, और उसने तमतमा आते कहा था —

'बेहयाई का मजा चखाऊं तुम्हे ?'

और वह आगे से डरी नहीं थी। और ज्यादा निडर हो आते कहा था — 'वह भी कर लो तुम! एक शराबी चीखने-चिल्लाने के अलावा कर भी क्या सकता है ? जान ले सकता है ? ले, ले जान! बेगैरत के साथ जीकर भी क्या करना है ?

'बेगैरत हू मैं ? उसने आस्तीने कसते हुए कहा था — 'और लच्चर भी! हैं ? तो तुम क्या हो ? कमीनी ?'

'हा, मैं हू कमीनी, क्योंकि आज तक भी कमीने के साथ ही हू। मैं मरी नहीं। डूबी नहीं

'तो अब तुम्हे कमीने के साथ मैं ही रहने नहीं दूगा।'

उसने उसके हाथ पैर कस दिये थे। पर उसका चबड़-चबड करना रुका नहीं था। बोली थी — 'नहीं रहने दोगे, वही अच्छा होगा। जितना कुछ इस घर के लिए किया, उसका सौवा हिस्सा भी कहीं और करूगी, तो बच्चे पल ही जायेगे।

'तब — अभी क्यों नहीं चली जाती छोड़-छाडकर — बच्चों को भी ?

'हा, तुम्हे ऐश करने छोड ही जाऊगी। सभालना बच्चों को भी। मेरी जैसी कोई फस ही जायेगी। मेमना बनना तो आता है तुम्हे ? एक महान नाटककार हो।

सच ही, वह मेमना ही नहीं ? या कि नाटककार ही बना नहीं रहा ? उसे खुद पर रोना आया। देखकर पड़ोसी दिलासा देने लगे, 'हिम्मत से काम लो। अच्छी हो जायेगी।'

जो आदमी एबुलेस लेने गया था, उसने आकर एबुलेस की सूचना के साथ यह भी बताया कि उसने बडे भाई को खबर कर दी है। मा और भाई अभी आते होंगे।

महिलाओं मे फिर खुसपुस उठी, "कोई भाई भी है, हमे तो पता नहीं था ?"

'और नहीं ?"

"इससे पहले भाई के पास ही तो था। पर करतूत छोडे तब न ? नहीं ही छूटा पीना, तो शांति ने ही कहा — 'परिवार मे कैसे रहते हैं, यह आदत डालो अब' — इसी बात पर तो छोड आया था यह कहकर कि 'तुम्हीं रहो! चमचागीरी करो इनकी। मेरा तो है यह सौतेला भाई! मैंने क्या लेना है किसी से ? "

'तो सातेले भाई है ? महिलाओं का संकुचित स्वर और सिमट गया।

'मा तो सग्गी थी न ? सग्गे बेटे की करतूतों के मारे बेचारी सौतेले के पास रहती है।

ओह ! इसीलिए इतना रो रहा है कि अब इसका क्या होगा ?"

कुछ महिलाओं ने घुर घुर बन्द करने को कहा, "वई ठहरो जरा सनने दो ! डॉक्टर जाच कर रहा है।"

सभी महिलाए नये सिरे से गरदन उचकाये भीतर झाकने लगीं।

दबे स्वर मे डॉक्टर ने अपना मत प्रदर्शित किया, 'बचेगी नहीं, पर पेट पीठ सुरक्षित है। शायद एक-दो पर्सेंट चास हो जाये — बचाव का "

भीतर डॉक्टर का मत सुना जा रहा था। बाहर चर्चा थी, 'पुलिस केस हाथ मे ले लेगी।

'पर बच जायेगी। डॉक्टर ने पेट और पीठ सुरक्षित बतायी है।"

और देखती नहीं कि उसके प्राण कैसे बच्चों मे अटके हुए हैं।

महिलाओं ने कान छु लिये, 'राम राम देखो कि मा क्या मर के भी मर सकती है ? और हे मेरे राम बच्चे ! बच्चे पता पायेंगे, तो सह सकेंगे ?"

देख लो ! बेचारी ने पेट पीठ एक करके पाले थे

एबुलेस मे ले जाते समय पुरुष-स्त्रियों का जमघट और ज्यादा बढ गया। शाति को सब कुछ अर्ध रात्रि के स्वप्न जैसा लग रहा था। अर्थहीन और अप्रासगिक-सा। फिर चार दिन और चार रातें — इस अप्रासगिक दृश्य मे और जोड दिये गये। मा, सास, जेठानी-जेठ — और सबके पार रोहित और मन्नो खडे थे। कोई शाति के सीने पर मुद्गर कूटने लगा। आखों से दरिया फूट निकला। आखों की कातरता खुद से ही नहीं झेली गयी। पलकें जुड गयीं। दोनों बच्चों को हटा लिया गया तो बद आखों से ही कहा, 'कहा ले जा रहे हो उन्हे ? अपने कृत पर खुद ही शर्मिंदा होते उसने परितप्त चेहरा फेर लिया पर होंठ हिलते रहे — 'रोहित ! ओ मेरी मन्नो

डॉक्टर आ गया, "यह क्या हो रहा है ? आप तो खुद ही मरीज को मार डालने पर उतारू हैं।"

अगले दिन भी वही — 'रोहित ! मन्नो

जेठ-जेठानी बोले, अब यही हमारे बच्चे हैं।"

"हा ।   आप इन्हे पास ही रखना ।" शाति के मुह से लबा नि श्वास फूट पड़ा ।

'नहीं, तुम ही उन्हे देखोगी । खुद ।   शाति की मा ने हिम्मत बधायी ।

"इनकी तो फिक्र छोड दो तुम ।   सास ने दिलासा दिया ।

अविनाश ने भी इस बीच दुनिया भर का उद्यम बिना हिचकिचाहट के दिखाया । सबसे बडी बात कि इतने गहरे सदमे मे शराब छुई तक नहीं, कि जैसे भी हो, इस दुनिया से भाग जाती निहायत भली बीवी, और दुनिया के मत को किसी भी कीमत पर अपने हित म बचाना ही है ।

शाति को अपने प्राणों से अनुप्राणित करने मे उसने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा । नतीजा यह रहा कि शाति हैरानी से आखे फाडे बिना नहीं रही । मन म नये सिरे से कुछ कीलने लगा । दोष भावना से शिराए फटने को हुई । छटपटाहट को ध्यान मे लेते हुए डॉक्टर ने ताजा खून चढाया । फलों का रस दिया गया । शाति ने आखे खोलीं । अब वह अपेक्षाकृत शात थी । चैतन्य थी । प्रज्ञा चक्षु । अच्छी तरह देखने समझने मे समर्थ । तब लगा कि उससे भारी अन्याय हुआ है । पूछे जाने पर बयान दिया कि उसका मशा वैसा करने का नहीं था । पता नहीं, किस कुघडी मे मति मारी गयी थी । क्या सूझा था कि एसा हो गया उससे, कि इस दुर्घटना के बारे मे स्पष्ट कुछ नहीं जानती वह ।

और दो दिन होश रही, तो कहा, 'कैसी अभागी है वह कि अपने नाम की लाज भी नहीं रखी गयी उससे । कितना दिक किया सबको ?   अच्छा, अब आप जाओ । भाभी   आप जेठ जी को भी   और   अम्मा को भी ले जाओ   और बेजी कहा हैं ?   " कहते-कहते थक-सी गयी ।

बेजी आ गयीं, तो पूछा "बेजी, मन्नो ने खाना खाया कि नहीं ?'

'खा लिया बेटी, तू कोई फिकर न कर ।

और रोहित ! — उसने पढना तो नहीं छोड दिया ?   उसकी परीक्षाए हैं — न ?

बेजी ने रोती आखे फेर लीं ।   और बाद वाले दिनों मे शाति न रोई, न कराही । पर आखे थक जाने पर ही मुदर्तीं, इससे पहले नहीं । जरा खटका होता तो आखे फिर खुलकर सतर्क होतीं । चारों ओर ताकतीं, और फिर बद हो जातीं । किसी अन्य खटके पर चौंकती वह कह आती, 'रोहित   ? तू घबडाया तो नहीं न?   देख, छोटी बहन को मारना नहीं   । देख   मन्नो — कहीं रो ई तो नहीं ?   अच्छा, उसे कहो कि ठीक होने पर हम   खूब घूमेगे ।   अप्पू घ-र   दीवा ली पर.   घुमाऊगी   ।

फिर चौथे दिन, नहीं, रात मे सज्ञा जाती रही । सुबह हुई, तो सास रुकने लगी । कोई

दस ग्यारह के बीच श्वास चुक गये और बस ।

कभी उसने मोक्ष चाहा था। श्वास तो मोक्ष म भी चुकते ही। पर जीते जी बच्चों को — जब चाहती, देख लेती। तब यह न लगता कि उन्हे भुला दिया है उसने। तब जीकर ही सद्गति पाती वह। पर अब सद्गति प्राण गवाकर पायी। पर हा, एक अतर कि प्राणात काल म चारों ओर घर परिवार, समाज — सब था। पर अत हुआ इस दृश्य का भी। शव जब्त कर लिया गया। मुर्दाखानों के जमादारों ने बताया, "चीर फाड होगी।

पर चीर फाड हुई नहीं। उचित समय पर पागलखाने के डॉक्टर का प्रमाणपत्र मिल गया कि साल भर से शाति पागल थी।

शव तब बिना चीर फाड के ही वापस मिल गया। शव को लिफ्ट से नीचे लाया गया। लोग वहा पहले से ही इकट्ठे थ, वे बढ आये। देखा, शव की टांगे और बांहे पट्टियो से बधी हैं। चेहरे पर झुलसन के दाग अब फफोलों मे बदल गये हैं। लटके होंठ — और फफोलों से बहता बदबूदार पानी। जो पानी नसों द्वारा चढाया गया था, वह छाती और पेट मे भर गया था। पन्द्रह घटे पहले कै और मूत्र हान से शव दुर्गंधित हो गया था। अत. शव को कम्पाउड म एक ओर पड़ा रहने दिया। बधी हुई पट्टिया खोलन मे भी कोई तुक नहीं थी। स्नान घाट तक उठा ले जाना भी किसी के बूते का नहीं था। परिणामत बाल्टी भर भरकर अस्पताल का पानी ही ऊपर से डाल दिया गया। कपडे भी ऊपर से ही डाल दिये गये। अविनाश से माग मे सिंदूर भरवा दिया गया। सारे सबधियों द्वारा मुह देख लिये जाने पर मुह पर लाल शॉल डाल दी गयी। मुह फिर सीधा श्मशान पहुचकर ही उघाडा गया। बारह वर्षीय रोहित से मटका फुडवाने के बाद मुखाग्नि की रस्म का निर्वाह कराया गया। रोहित का पिता जैसा तपा चढाव-सा चेहरा — चिता के क्रमशः बुझ जाने तक बुझ-सा गया।

नवबर की ठडी हवा मे चिता क अगारे भी राख ओढ़कर पडे रहे। बस, इस वर्ष की दीवाली का इतना कुशल रहा। हा, इतना और कि चौथे दिन दीवाली पड़ी। हरिद्वार म अविनाश अस्थिया प्रवाह कर आया। लोगों मे फुसफुसाहट उठी "दूसरा ब्याह करेगा?"

किसी न फिर कहा, "कौन देगा शादी को?"

कोई दूसरा स्वर "बहुत देने को आते हैं।"

तेरहवें दिन का निर्णय करते समय रोहित कुछ अधिक प्रौढ़ दिख रहा था। किसी ने कहा, "बच्चा अभी छोटा था, ऐसे मे हमारे यहा सब देने म नहीं करवाते।"

"लेकिन दूसरी ने अपना मत व्यक्त किया, 'ठीक है, बेटा जवान नहीं, पर बाप तो छयालीस से ऊपर हो गये। पहला बेटा होता तो करता यह सब कि नहीं ? और बेटा जब है, तो वही हकदार है। हमारे यहा तो बडे-बूढे के कहने पर बाल भी मुडवा देते हैं।"

'छि । एक अन्य महिला ने मत का विरोध करते हुए कहा, आजकल कौन सिर मुड़वाता है ? अरे, पगडी तक नहीं पहनते।

'चलो धोती सही, पर इन्होंने तो धोती भी तह कर रख दी।

एक पढी लिखी महिला बोली, 'छटे हुए बाल और कुर्ते-पाजामे म तो मैं ही नहीं पहचान पायी इसे। लगा, 'जैसे जनऊधारी श्वेताबर मुनि खड़ा हो।"

"आखिर मा थी। अगर बेटा कुछ पल के लिए मुनि बन भी गया तो क्या ?

एक गभीर कठ ने उपर्युक्त कथन का अनुमोदन करते हुए कहा, 'मा के लिए जितना त्याग किया जाये, थोड़ा है।

किंतु इतने बडे एकत्रय मे से किसी एक ने भी यह नहीं कहा कि पति द्वारा पत्नी के लिए कितना त्याग किया जाना पर्याप्त है कि क्या करके व्यक्ति महान नाटकीयता से तौबा कर लेगा कि आने वाले दिनों मे कोई ऐसे दगाबाज युद्ध या इतिहास को फिर नहीं दोहरायेगा ?

दावा

तारा जब भी मंदिर जाती है, कोई-न-कोई कामना मन मे उग ही आती है। इन दिनों उसे किसी अच्छी नियुक्ति की जरूरत थी, अत स्वभावत ही उसने कुछ अधिक झुककर मूर्तिमान श्री राम जी के आगे हाथ जोडे। पुजारी उस समय श्री राम जी की प्रस्थापना सीढियों पर बिखरे बासी फूल एकत्र कर रहा था। उसके सिर उठाते ही तारा ने पूछा, 'पुजारी जी, भगवान कितना समय और लेंगे ?

पुजारी जी जरा देर को ऊपर देखे। कहा, भगवान बहुत दूर की सोचते हैं।"

तारा थोडा मुस्कराई। कहा, "ठीक है, तब तो ऐसी चिंता नहीं पर पुजारी जी, यह तो अमरीका पाकिस्तान को हथियारों से लैस किये जा रहा है, तो भी भगवान दूर की सोच रहे होंगे ?

"बेशक," पुजारी जी मुस्कराये, 'यों तो राजनीति मे भावुकता घातक होती है, किंतु हमारे देश की जलवायु ऐसी है कि हम हिंसा से काम ले ही नहीं सकते। अत. बेकार उलझते भी नहीं तभी तो हम टिके हुए भी हैं। आखिर भगवान ने हमें वक्त पर आगाह कर दिया। अभी कुछ बिगडा तो नहीं ?

तारा ने चाहा, पूछे — आगाह बिगडने के वक्त किया था, जब देश विभाजित हुआ था ? जन-संहार, जो आज तक चलता आ रहा है ? पर सौ बातों की बात कि भगवान दूर की सोचते हैं, और उसी मे कल्याण भी आ जाता है। नीति पर चलते हुए सदाचारी जीवन बिताते जाओ — काम अपने-आप बनते जायेंगे, किंतु घर पहुंचने पर अचानक जब तारा प्रसाद छोटे भाई को देने लगी, तो उसकी आखे भाई की बाहों और फैले हाथों पर पडीं, और आखे फिर फिसलती ही गयीं। छोटे भाई बिंने के समूचे शरीर पर सूजी नसों का फैला हुआ जाल ! उसके पैर तक सूखकर ठठ्ठर हो रहे हैं।

बाद के आने वाले दिनों मे शायद वह बिंने की ओर देख नहीं सकेगी। बडे भैया के खडे होने का आभास हुआ, तो उनकी ओर बिना देखे ही कहा, "बरसात के दिनों मे दूध

मुझसे पिया नहीं जाता। दोनों वक्त का दूध आप बिंदो को दे दिया करे।

महीना भर पहले की बात याद आयी, इतवार की छुट्टी तारा ने पैंडिंग केस तैयार करने में बिताया थी। तब हाथ में नौकरी नहीं था। एक एडवोकेट के साथ प्रैक्टिस सीखनी थी। अपना एकाध पुराना केस भी तैयार कर लेती थी। उस बार यह भी सोचा था कि अपने पुराने मुवक्किल को घर पर ही बुलवा लेगी। यों हाथ-के-हाथ केस थमाकर रुपये वसूल करके बड़े भाई से कहेगी — 'इन रुपयों से भाई पड़ोसी की तरह दो चार मुर्गियां खरीद लाये। अंडे पर के हो जाने पर बिंदो मतवातर अंडे खाने से तंदुरुस्ती पकड़ लेकर दौड़ धूप करने लायक हो जायेगा।

केस तब एकाध ही तैयार हो पाया था, दूसरा केस अधूरा ही पड़ा रहा। सोम, मंगल, यहां तक कि बृहस्पति भी बीत गया, पर केस तैयार नहीं हुआ। मुर्गियों लायक रकम जमा हुई नहीं, और आज भी बिंदो वैसा ही खांसता है। पिछले हफ्ते भी यही था, और आज फिर बृहस्पति है।

पिछले चार दिन से खिन्नता की परत मन पर मुर्दा झिल्ली जैसी पड़ी है। कल छुट्टी लेकर एक ड्राफ्ट तैयार किया भी था, पर दोबारा पढ़ने पर लगा कि आखिरी पैरा सारहीन सा था, और सारहीनता ने ही केस के इफक्ट को मार दिया था। उसने एक पुराने क्लायंट के केस के बारे में सोचा, जिससे कभी तय हुआ था कि वह केस जीत जाने पर पूरी रकम का एक-चौथाई भाग तारा को देगा। पर उसने भी आधी ही रकम दी थी, यानी बाकी रकम के लिए तारा उस पर दावा करे। बस, यही होता है, जभी तो लोग कहते हैं कि यह पेशा औरतों के लिए नहीं, अभागी औरतों के लिए है। हालांकि ऐसे केसों के लिए तारा को मुंशी भी रखना पड़ा था। बाद में मुंशी के मन में खोट आ गया। वह रुपयों की उगाही करता, पर बाहर ही-बाहर रुपया हड़प जाता। सुनकर इशु ने कहा, 'तुम प्राइवेट प्रैक्टिस छोड़ ही दो। आनरेरी मजिस्ट्रेट की अवधि चुक जाने पर स्थायी मजिस्ट्रेट के पद के लिए एप्लाई कर दो। तुम सफल हो सकती हो ?'

'जैसे इतना आसान है ?

'जरूरत हो, तो आसान बनाना भी सीखना पड़ता है।

पर अपने लिए मैंने एक दूसरी जगह एप्लाई कर रखा है — बस, बिंदो को ही देखकर हिम्मत टूट जाती है।

एक बेरोजगार भाई के दुविधाजनक चेहरे का भाव वह इशु को कैसे समझाये ?

इशु ने गहरी सोच में डूबे रहकर एक रुपये का पैकेट थमाते हुए कहा — 'यह बिंदो

को दे देना। वह अपने लिए खु" सोचेगा। तदुरुस्ती रहेगी, तो भाग-दौड भी कर लेगा।

'नहीं ! उसने रुपये लौटा दिये, 'अभी रखो।'

पिछले महीनों की गिरी पड़ी बात तारा को मंदिर मे भी एक बार या" आयी थी, और उसने भगवान से कहा था — 'मुझे दूसरे के धन से बचाओ। दान देना है, तो अपने घर से दो। और मुझे दो तो शक्ति दो जूझने की

पर तारा मे शक्ति तो इतनी-सी भी नहीं, कि जहा पैसा डूबा पड़ा है, वहा एक रिमाइडर ही भेज देती। रुपये-वसूली पर मुर्गियां खरी"ी जा सकती थीं। पर कहीं न-कहीं रकम डूबी पड़ी है। बकाया वसूलने वाला ही कोई नहीं। हा, सहायता का हाथ इशु ने बढ़ाया था। इशु पराया नहीं, पर उसे अभी अपना भी नहीं कह सकती तारा। अहसान न लेना ही अच्छा।

जाने कहा कहा और कब-कब की बाते सोचती हुई तारा जब कार्यालय पहुची, तो जमादार अभी झाडू लगा रहा था। 'मिस साब, आप क्यों इतना जल्दी दफ्तर आती हैं ?

'तुम काम खत्म कर लो पहले।" तारा रुकी रही।

जमादार के जाने के बाद, तारा ने पहले अपूरे केस को देखा, और अलग धर दिया। इसे इतवार को घर पर तैयार करेगी। फिर दूसरा ड्राफ्ट कि जिसका अंतिम पैरा सुधारना था। पूरा पैरा नये सिरे से लिखा। उसे पढ़ा। फिर सुधारा, फिर पढ़ा, फिर सुधारा, और तब फेयर करके केस से टाक दिया। अन्य कर्मचारी आये, इससे पूर्व ही तारा दफ्तर की फाइले तैयार कर चुकी थी, फिर भी काम मे इतनी तल्लीन कि उसके साथी कब आकर अपनी मेजों पर बैठे और कब लच के लिए उठ भी गये, उसे पता नहीं चला। वह शाय" वक्त और काम के गणित को ही जानती है। कभी अपनी आखों से खु" ही को कागज पर झुका देखती है, अक्षर का जोड़-तोड़ करती। सिर उठता है आहट पर, किंतु आज आहट बादल की थी, और अब धीरे धीरे बरस रहा था। बूदों पर दृष्टि गड़ाये सोचा — काश, जीवन इतना ही होता कि व्यक्ति लहराते हरेपन को देखता रहता ! बूदों की महक उसे भिगोये रहती, और व्यक्ति की भूख-प्यास, नींद चुक जाती ! व्यक्ति जरूरतों का गुलाम भी न रहता ! और होता उसके पास बेहिसाब वक्त ! तब व्यक्ति बूदों जैसा उड़ता, या कपास के फूल जैसा खिल जाता। तब आकाश की स्वच्छता बरसती। उ"ासियों के बादल न उमड़ते हुए और चुपचाप बरसता। — मात्र सौंदर्य ! व्यक्ति के गि" तब चिंताओं

का कठघरा भी न होता। इस टीन की छत पर गिरने वाली बूंदे — मीठी घंटियों जैसी ठनकती। वहीं से एकाकी यात्री आता और सुरीली घंटियों में घूम जाता, या अपनी किसी खोई संगिनी की ढूंढ-भाल मे आखे बिछा देता। और नहीं तो मायूसी के क्षणों मे अपने झोले को टटोलता — एक बरसाती फल निकालकर चखता, और सोचता कि उसकी संगिनी पास होती, तो वह 'नासपाती का जायका कैसा है ? सखी से पूछता। वह अजनबीपन से भरा उत्तर देती — 'खट्टा! बरसाती पानी जैसा!' और उसके मुह मे कच्चे सेब या आडू जैसा जायका भर जाता। कच्चे फल कुतरते हुए दोनों का अजनबीपन बीत जाता। सखी बरसात की उमस सहती सहती सो जाती, जागती, जब सूरज के तमाम रग अस्ताचल मे भर जाते।

पर अस्ताचल मे रग भरने से पूर्व ही बजा पाच का सायरन, और उसके सपनों का अहसास असलियत मे बदल गया। मन मे जमादार के उपस्थित होने का आभास उसे सीट से उठ जाने को प्रेरित किये है। अक्सर यही हुआ है कि जमादार की मौजूदगी से आख चुराते हुए सिकुड़ना पड़ा है उसे। जिस दिन जमादार अनुपस्थित हो, उस दिन चाबी का गुच्छा छनकता है। पर चौकीदार का उतनी जल्दी नहीं रहती कि तारा को, जूतों की आवाज पर सिर उठाना पड़े ? पर देर सबेर कार्यालय की चौहद्दी छोड़नी ही पड़ती है — जिन्दगी तब दौड़ने लगती है सड़कों पर। पूरा घंटा सवारियों को बस के दड़बे मे पख फड़फड़ाती मुर्गियों जैसा चढ़ते उतरते देखती है। तरह-तरह की आवाजों मे दब जाती है तारा। और [illegible] वजन से दब जाती है, तब ड्राइवर कसमसाता सा कह उठता है — 'ओए, हुण चलण भी देगा कि नहीं ? पता नी ऐ केड़िया गाटिया गालद ने पे ? कुछ रुककर फिर — ओए, पता वी आ — मामा तेरा अग बैईठा ए — चलान करन नू।

यदि इतने पर भी कण्डक्टर की सीटी सुनायी नहीं पड़ती तो सरदार बड़बड़ाता है — 'चलो पुत्तरो, भरी आओ — कास गल दा — इन्हाँ नू पता नहीं, कई गड्डी सेट हुंदी ऐ। कीन्हा कीन्हा चिर खल्लार छड्डे ने गड्डी नू और धक्कापेल करती फालतू सवारियों को सचेत करता वह चिल्ला पड़ता — ओए, लमके न गड्डी नाल कोई वी। रोज रास्ता इन्हीं सुनी सुनायी बातों मे कटती है, और घर आ जाता है। तब लगता है, तारा एक दड़बे से दूसर दड़बे मे आन पहुची है।

तारा को देखते ही बिंदो उत्साह से भर जाता है — आओ जी, आओ, एडवोकेट साहब! मजिस्ट्रेट जी! कई बार बिन्दो की भूल सुधारने का मन होता है, कि वह तारा को एडवोकेट या मजिस्ट्रेट कहकर न बुलाये, एक क्लर्क है — तारा — सिर्फ सहायक। पर क्या

कि वह बिंदो को टोक नहीं सकती।

बिंन्ने आज भी रोज की तरह सीढ़ियों पर ही, रोज वाले मुहावरे से स्वागत करता खड़ा है। पर बिंन्ने के दुबलाये तन या चेहरे पर आंखे टिकाये बिना ही देहरी लाघ जाती है तारा। बिंदो उसके आगे रोस्ट किये हुए टोस्ट प्लेट में लिये पूछता है, "खस्ता बने हैं न?

तारा सिर हिलाती है, तो कहता है, 'क्यों, पसन्द नहीं आये?"

पूछे हुए का जवाब नहीं दे पाती तारा। क्यों है ऐसा कि यह वातावरण नागवार न होकर भी असह्य है? शांति और अशांति के बीच के संधि स्थल को ढूंढ रही है तारा। पर वह स्थल कहीं दिख ही नहीं रहा। फिर देर रात तक जगी रही तारा — और खिड़की का पल्ला खुला रह गया था। नींद खुली दूसरे पहर। मच्छरों के काट खाने से। उठी, और डोरी खींचकर चिक गिरा दी। चिक खुली तो सीधी ड्रेसिंग टेबल के शीशे पर आन गिरी।

वजनी शीशा हिचकोला खाता गिरा, जिसे तारा ने घुटने पर झेला। शीशा मेज पर धरकर घुटने को देखा। घुटने का मास छिलकर अलग हो गया और सूजन उभर आयी दिखी। उस रात टीस के मारे सोया नहीं गया। सोचा, प्रभातकालीन वन्दना अभी कर ले। अक्सर नींद उखड़ जाने पर वह वन्दना करने लगती है। सुबह उठा जो नहीं जाता। पर दो पहर रात गये उनींदापन भी कहीं पीछा छोड़ता है। बार बार नींद को झटके से भगाना पड़ता है, लेकिन आखिर मे जीत नींद की ही होती है। तब एक खलिश-सी पैदा होती है। खुद से पूछती है तारा — 'यह वन्दना हो रही थी? भगवान से भी धोखा! सौदेबाजी?

तारा क्या करे? जानबूझकर तो करती नहीं। तारा जैसे जवाबदेही करती है — 'पर यह तो हाजिरी भरने जैसा ही हुआ न? फिर अन्दर से कोई पूछता है — 'तनखाह खरी करने जैसा। काम करो या न करो।

ठीक है। तारा मानती है कि यह बिना किये खाने जैसा है। हाथ उठाकर मांगने जैसा। पर मांगे किससे? वही अगर भरकर भेजना तारा को, तो? और कि तारा ने देखा है कि इस चहारदीवारी के बाहर भगवान ने बहुतों को बहुत कुछ दे रखा है। पोथों और गधों तक को। पर यही बात है न, यही न, कि 'सकल पदारथ है जग माहीं'। बस, तारा के लिए है कि वांछनीय को भी कहीं न उकेरो! वह रात तब ऐसी तड़पन और टकराहट मे ही बीती और निजात मिली सीधा दफ्तर पहुंचने पर। सिर दर्द की, फिर

उच्चाटन। वैसी ही उद्विग्नता। बिंदो और भाई का सामना होने पर उन्हे खाली या निहत्था महसूस करने पर याद आन लगता है सब, कि क्यों ?   हा, यह कब स है ? तारा हिसाब लगाने बैठती है। शायद भाभी के जाने के बाद से, या भाभी के जाने की बात फैल जाने के बाद से या कि भाभी के रहते ही   पर मुद्दा ? भाई को पक्षाघात के बाद बहाली के आदेश न मिलना। भाई बदस्तूर फिटनेस प्रस्तुत नहीं कर सके। सरकारी अस्पताल का ठप्पा नहीं था।

'पहले ही सरकारी इलाज करवाते, सरकारी छुट्टी लेते।

भाभी की बात पर भाई हसते।

'छुट्टी भी गैर सरकारी होती है ?

भाभी खीजकर माथा पकड लेतीं। 'तुम्हारे पास छुट्टियों का हिसाब है ? नौकरी म ब्रेक आ गयी तो ?

'नहीं — ब्रेक नहीं आयेगी। भाई तसल्ली दिलाते।

भाभी अपना डर व्यक्त करतीं — 'पता नहीं, लिया जा भी सकेगा तुम्हे ?

अब होगा वही जो होना है

इसके बाद भाभी ने और पूछताछ छोड दी। महीने के आखिर म, एक दिन स्कूटर मे सामान धरा, और मायके चली गयी।

भाई को इन बातों का दु ख हुआ हो या भाभी के जाने का मलाल — भाई को देखने से इस बात का पता नहीं चलता। भाई बल्कि पहले से ज्यादा निर्द्वंद्व हो गये हैं। घर के प्रति ज्यादा जिम्मेदार। भाभी का प्रसग उठाया जाये, तो टाल देते हैं। कहा जाये — भाभी यह कहती हैं   ' तो बीच म टोक देते हैं — 'कहने दो, जो कहती करती है। छुट्टी।   '

'पर भैया   ' तारा समझाने जाये तो कहते हैं — 'चली गयी है   तो उसके जाने से हमारा तो कुछ बिगड नहीं रहा। घर म सबको वक्त पर सब मिलता है। मिलने वाले अब भी आते हैं। सबका पहले जैसा सत्कार होता है। बिंदो काम पर लग ही जायगा। कम्मो ब्रिलियट स्टूडेंट है। उसके बारे म और तुम्हारे बारे म सबकी उमदा राय है। तुम्हारा ओहदा

भैया। इससे ज्यादा नहीं कह पाती तारा। ओहदे के नाम पर ही गश-सी आ जाता है उसे। पर भाई कहते हैं — भाभी का भार भाभी पर छोड़ो   अपने लिए आप कमाकर इकट्ठा करने दो उसे। हम पर अहसान तो नहीं थोपेगी अपनी कमाई का '

पर इसमें भाई का ही कसूर नहीं है कि अपनी नौकरी नहीं सभाले रहे वह। अब भी क्यों नहीं अपने को 'फिट' साबित करते? क्यों सबकी गलतियों को सहारा दिये जा रहे हैं? अपने को दूसरी बातों मे खपा रहे हैं? सूरज उगते ही पूछताछ — किसको क्या चाहिए? चाय पानी — सब मेज पर तैयार। फिर वक्त पर सबको मेज पर बुलाना बाद मे मेज खाली करना । भाभी इन्हीं बातों का उल्लेख करती टोक्ती थी — 'तुम क्या इन्हीं कामों के लिए हो? इतना वक्त अगर अपने इलाज पर लगाते?

तारा क्या भाभी जैसी बन सकती है? प्रतिवाद कर सकती है? ऐसे मे मा होती ता मा की जागरूकता के आगे भाई को हैरान रह जाना पडता था।

यह नहीं कि तारा मे मा जैसी जागरूकता नहीं — पर तारा के पास भाई जैसे व्यक्ति के लिए कोई हल नहीं, पर यही तारा दफ्तर की कुर्सी पर ढेरा मसलों का हल निकालती रही है। निकाल रही है। कारण है, वहा तारा अनुशासन के विधि विधान से बधी है। काम मे कोई हडबडाहट नहीं। भीतरी आख खुली है। फुरसत मिलने पर बाहर की आख भी खुल जाती है। कुर्सी पर बैठे-बैठे ही बाहर का सब दिख जाता है। दफ्तर का दरवाजा जिस लेन पर खुलता है, वहा से कुछ फीट की दूरी पर है पुलिस क्वार्टरों की दीवार। कहीं कहीं मझोले कद के पेड दिख जाते हैं। शहतूत या आडू के हैं। दालान और क्वार्टर। यह क्वार्टर इकतल्ला है। पास से निकलो तो बन्द दरवाजों मे नीली खिडकियों का कोई आभास नहीं होता। पीछे तक चलते जाने पर एक निर्जन सा अहाता दिखायी दे जाता है। एक चौकोर चौहद्दी मे एक छितराया सा भारी पेड। शायद पीपल है। पूछने पर किसी ने बताया — 'पहले यहा कचहरी लगती थी। पर कचहरी का कोई आभास कहीं नहीं होता। थोडा सीध मे चलने पर टीन के शडवाला एक बन्द दरवाजा। दरवाजे की ऊपरी पटटी पर लिखा है — डी ई एस यू 1928 1952 — पर यहा भी कहीं कोई मानवीय आभास नहीं। लौटने पर फिर वही जनशून्य-सा अहाता, जिसके सामने तारकोल का पक्का मैदान है। थोडे फासले पर बिजली के खभों का चौडी सडक तक जाता सिलसिला। यह सडक बिजली के खभों के साथ दूर तक भागती गयी है, जिसपर रायपुर रोड की सुन्दर इमारतें हैं। सडक पर पहिये भागते हैं, तो पहियों के साथ-साथ इमारतें भी घूमती रहती हैं। फिर ये पहिये और इमारतें तारा को नये सिरे से घर की देहरी पर पटक देते हैं। देहरी, जो कि तारा के लिए वाछनीय और अवाछनीय एकसाथ है क्योंकि तारा दफ्तर के गिर्द के वातावरण की चीरफाड जैसी चीरफाड इस देहरी की नहीं कर सकती। यह देहरी तारा का दर्शन-द्वार है। तारा का धार्मिक आस्था का मन्दिर। मा के

अध्यात्मवाद से मंडित स्थली। पर कुछ अतिरिक्त भी है कि जिसमें फसकर भटक जाता है तारा का मन। ऐसा कुछ कचोटता रहता है कि मन करता है, अपना पराया को, यहा तक कि नौकरी छोड़-छाड़कर सन्यास ले ले वह। ऐसा तब होता है, जब तारा याददाश्त की परतें उधेड़ बैठती है। और उन परतों में छिपे दिख जाते हैं कुछ दृश्य। कुछ घटित। याद आ रहा है, एक जानकार के यहां से तारा के लिए एक रिश्ता आया था। तारा राजी नहीं हुई — रिश्ता लौट गया। बात आयी गयी हो गयी। पर हमारे समाज में बहुताहित है, दिखाने की। दिल से कोई आयी गयी नहीं करता। रिश्तेवालों ने भी वही किया, बदला लिया। पहले कुछ पावना भाई पर निकाला। दावा किया। भाई की तनख्वाह जब्त करानी चाही। पर भाई की तनखा थी नहीं, और वही रकम पता नहीं किस तिकड़म से तारा के नाम लाद दी। और खूबी देखिए कि वे दावा भी जीत गये और तारा की पगार रुकवा दी। कान में पड़ा कि पगार सूची से तारा का नाम ही नदारद है। एस ए डी ए से जानकारी हासिल करने पर पता चला, तनख्वाह पाने के लिए जमानत चाहिए।

एडमिनिस्ट्रेशन ने इसे सहज लेते हुए कहा — 'किसी की श्योरिटी दी होगी आपने ?' पर तारा इसे कैसे चलता अफेयर मान ले ? उसने अदालती ऑर्डर पढ़ा, और सन्न रह गयी। तनखा पर कुर्की के ऑर्डर ! उसके कागज उच्चाधिकारी के पास 'फर्दर श्योरिटी' के लिए भेजे गये। तारा की बुलाहट हुई। पर आश्चर्य कि उच्चाधिकारी ने छान बीन किये बिना ही श्योरिटी फार्म पर दस्तखत कर दिये। बोझ हल्का हुआ और बात फैल जाने का डर भी दूर हुआ। तनख्वाह का मुंह देखा तारा ने, पर डबडबाई आखों से। सोचा, इतना बड़ा पाखंड ? और, कि तारा यदि यह रिश्ता मान लेती और उस घर में आज जैसा कुछ हुआ होता, तो ऐसे लोगों में से एक भी तारा के बारे में ऐसा न सोचता, जैसाकि तारा के बॉस ने सोचा, और किया। पर इसकी तह में कारण, अधिकारी का विश्वास भी हो सकता है ! फिर उस विश्वास को ही शिरोधार्य करते हुए तारा ने नियत अवधि से पूर्व ही अपना पद छोड़ दिया।

अब तारा निर्भय थी। उसने जाना कि व्यक्ति को डराता है — डर ! और डर उसे होता है, जिसके पास कुछ है ? अब तारा के पास कुछ नहीं — न पैसा, न ओहदा। हां, बेकारी का बोझ है। इस बोझ को उतारना है तारा ने। नये सिरे से कितना हाथ पसार पसारकर उतारा था बेकारी का बोझ ! अनगिनत जुम्तजुओं के बाद दफ्तर की मेज-कुर्सी मयस्सर हुई थी तारा को। जिस दिन पहली बार वह कुर्सी पर बैठी थी, कालांतर में ऋषि-मुनियों द्वारा की गयी तपस्याओं के सुने-सुनाये प्रसंग याद हो आये थे,

कि वैसे वर्षों एक टाग पर खडे रहने के उपरात उन लोगों की तपस्या सफल होती थी। आज यदि तारा खुद को तीते अनुभवों की गर्ने गुबार से बाहर खींच भी ले, तो भी क्या वह यह भूल जायेगी कि कैसी असाध्य रही होगी ऋषि मुनियों के लिए वैसी भगवद्-प्राप्ति ?

असाध्य ! किंतु मधुर ! क्योंकि असाध्य ही मधुर होता है। वे तपस्वी भी यदि आज तारा को देख, तो तारा के क्षार क्षार तलुओं, या छिद्र छालों का आकलन कर पायेंगे वे ? ज्ञान पडेगा उन्हे कि सघर्ष ने आज के व्यक्ति को किस हद तक छील दिया है, कि शिक्षादरबार मे स्वीकृति, या आज सरकारी दरबार मे नियुक्ति — बिना हलकान हुए कितनों के लिए सभव है ? अपवाद को छोड़कर — शेष सभी प्रत्याशी हलकान होने वाली श्रेणी से ही सबधित होते हैं। यही वजह है कि विजयी होने के बाद इन्हीं हलकान होने वालों को लोग 'मुमुक्षु' कहते हैं। भाभी भी यही कहती थीं (भाई से) — अपनी बहन से कहो — ये खाना भरपेट खाया करे। साधु सन्यासियों जितना खाने पीने से कोई काम करने लायक रहता भी है ? मैं दफ्तर मे हू न पता है — काम कैसे खून चुस लेता है।

'खून अभी है।' तारा भाभी की बात काट देती।

'इसे यह भी समझाओ कि जूता ढग का पहना करे। जरा इसके पैरों का हाल तो देखो।

भाभी तब बाटा शू-कपनी का जूता उसके पैर म फिट बैठातीं, कहतीं — अब चलकर देखो।

वह पैर खींच लेती — 'यह अपने लिए रखो भाभी।

ऐसे अवसर पर भैया आ जाते तो कहते — 'तारा, यह ऊबड-खाबड जूते तो सच ही पैर छील डालेगे। बात मानो

भैया के आगे चुप रह जाती वह। इसलिए भी कि तब भैया की तनखा घर म आती थी। भाभी का ध्यान तब उसके पहरावे पर भी गया था। उन्होंने भाई से ढाका और खटाऊ साड़ी लाने को कहा।

भाई ने बात की ताईद की — 'सच, तारा, मोटे सूत से बदन पर घुमौरिया उतर आती हैं

'रहने दो भैया ! आदत है मुझे।

सच, किसी चीज का असर नहीं होता तारा पर। न तब, न अब। घर के स्टोव के आगे घुरी हो, या मेज पर — उसकी गरदन मे कोई बल नहीं पड़ता। कुछ भी लाये,

लक्कड़-पत्थर, सब हजम। घर में कहीं पड़ी रहे, औंधी सीधी, कहीं कोई कमर नहीं होती।

हां, भाभी का गद्देदार पलंग जरूर कुछ दिन रीढ़ में चुभता रहा था, पर अंत में वह पलंग उसने भाभी के पास भिजवा दिया था। चुभने को रहा ही नहीं! अब तो ...यों भी सब भाई के हाथ है, और भाई तो गंगा ही दूसरी बहाते हैं। खस्ता दालमोंठ! महंगे बिस्किट! तारा को कहना पड़ता है — 'यह आप लोगों के लिए है। — कम्मो को खिलाएं।' खाई नहीं जातीं ये चीज उससे।

दफ्तर में गेहूं के गस्से आम रस से निगलती है, पर घर पर वही आम उसे 'गर्मी करता है।' — सुनकर भाई भी मन मसोसते कहते हैं — 'हां, गर्म तो है आम।'

तारा कैसे कहे कि मौसम की गर्मी से कई गुना अधिक गर्मी कहीं भीतर सालती है उसे? और वह इससे बच भी नहीं पा रही कि सबके उठने की राह में तारा ही दीवार जैसी उठी खड़ी है। सबकी तरक्की की राह उसी ने रोक रखी है। उसी की वजह से परिवार के अन्य सदस्य दयनीय-से हो आये हैं। सच, एक भाभी को छोड़ सभी से टकराई है तारा। भाई क्यों तारा को वक्त पर खाने की हिदायत करते हैं?

बिन्ने क्यों उसकी निखरी खाट पर दरी की तह जमा देता है? उसकी चारपाई पर कभी ऊंघ जाती है, तो वह क्या कुर्सी पर ही झूलता रहता है?

इन बातों पर कभी तारा झुंझलाए भी, तो बिन्ने और बड़े भैया मुंह बाये एक-दूसरे को देखने लगते हैं। आज यही हुआ, मन्दिर से परत कर आते ही तारा सहसा झुंझलाई — 'मेरी चप्पलों को कोई न छुआ करे। आखिर क्या पहनकर मन्दिर जाऊं? देखो, ये पैर!' दोनों भाई एक-दूसरे को कैफियत तलबी जैसे भाव से देखकर मानो बोले — 'थकी है आज!' तारा को भी महसूस हुई थी थकान, पर रोज वह थकान भी भली ही लगती थी। फिर आज ही क्या पैर मनों भारी लग रहे हैं? जबकि राधा जी के पैर तो कितने कोमल सुन्दर महावर रंगे-से थे। कृष्ण जी के उठे हुए पैर भी उतने ही सचकदार — रंजित! वैसा ही पहरावा! दोतरफी शीशों के बायस कतारों-कतार चौंपियाता सौंदर्य! आश्चर्य कि रोज की देखी जानी ये मूर्तियां आज तारा के लिए एक अनुभव बन गयी हैं। अनुभव, जो किसी को अपने प्रिय के प्रति अभिमान प्रकट करने को प्रेरित करे।

तारा ने जड़ित शीशे में तब खुद को भी देखा था, और भारी मन से सीढ़ियां उतर आयी थी।

संतोष असंतोष के पलड़ों में झूलती तारा सहसा कर्बला की मोड़ पर रुकी। सामने

से ठंडे पानी की गाडी को ढलान पर ठेलता एक युवा गुनगुना आया — 'दुविधा की धारा से अब तुम्हीं मुझे निकालो।

मार्केट के चौराहे से युवा ने गाडी त्यागराज मार्ग की ओर मोड दी। साथ ही गुनगुनाहट भी दब गयी। पर तारा की चेतना आज दबी नहीं। शायद कि व्यक्ति सदा सोया नहीं रह सकता। ध्वनिपूर्णता और ध्वनिहीनता की संगमता लिये जीता है।

घर आ गया।

विन्नी कम्मो को प्राब्लम समझाता रजिस्टर मे उतारता जा रहा था।

'यह रजिस्टर तो मैथ्स का है। तारा ने टोका।

'मैडम ने कहा था कम्मो सकपका सी गयी।

'मैडम ने स्कूल रजिस्टर मे भाई की लिखाई भराने को कहा था ?

झल्लाकर विन्नी ने तड से वह पन्ना फाड डाला। 'जब तक रजिस्टर से पन्ना अलग नहीं होगा — इन्हे चैन थोडा पडेगा!

विन्नी ने कुर्सी अंधेर मे खींच ली। कम्मो ने आखे किताब पर गाड दीं।

बडे भाई थे, अन्दर चलकर आराम करो।

तारा अन्दर गयी तो भाई ने खाने का कहा। बोली, 'नहीं।

'वजह ?

'डॉक्टर ने वजन बढाने को मना किया है। आप नाराजी की वजह मान रहे हैं ?

'नहीं। मैं कम्मो की बात कर रहा था कि एक मे मन नहीं लगा — दूसरा रजिस्टर ले लिया। इसके अलावा तो कभी तंग नहीं किया उसने, कि लडकिया जैसे सखी-सहेलियों से चख-चख करती हैं। वीडियो के पास बैठी गानों की सुरे मिलाती है। बेचारी बच्ची है, उसी पर गुस्सा! गुस्सा, मालूम है,तुम्हारे लिए नुकसानदेह भी है ?'

'नुकसान तो हो लिया। फिर, उस पर इतना बात-बतगड ? बोली, 'मैंने इतना ही तो कहा था कि पैसे के मामले मे लापरवाही ठीक नहीं। मा होती तो कहतीं कि नहीं कि अब कम्मो के भले-बुरे की जिम्मेदारी किस पर है ?

अचानक तारा के सामने एक साफ शफ्फाक सवाल तिर आया, "जैसे अपने भले-बुरे के लिए जिम्मेदार तुम भगवान को मानती हो! और खाने से इन्कार भी क्या इसीलिए नहीं किया था कि तुम भगवान से रूठी थीं ? तुमने उन्हे उलाहना नहीं दिया कि वे खुद पर कितने उदार हैं ? और तुम पर कृपा करने मे कितनी किफायत से काम लिया था

भगवान न ?

और नहीं तो क्या ? — तारा न कहा, और अधर मे भगवान के सामने खडी रही — 'जिस पर यह भी चाहते हो, तुम पर शिकायती होने का दावा भी न करू मैं ? आसुओं से भरा आख लिये तारा नीचे कम्मो और बिल्ले के पास बैठ गयी।

से ठड पानी की गाडी को ढलान पर ठलता एक युवा गुनगुना आया — 'दुविधा की धारा से अब तुम्हीं मुझे निकालो।

मार्केट के चौराहे स युवा ने गाडी त्यागराज मार्ग की ओर मोड दी। साथ ही गुनगुनाहट भी दब गयी। पर तारा की चेतना आज दबी नहीं। शायद कि व्यक्ति सदा सोया नहीं रह सकता। ध्वनिपूर्णता और ध्वनिहीनता की सजगता लिये जीता है।

घर आ गया।

विन्नी कम्मो को प्राब्लम समझाता रजिस्टर म उतारता जा रहा था।

'यह रजिस्टर तो मैथ्स का है।' तारा ने टोका।

'मैडम ने कहा था' कम्मो सकपका सी गयी।

'मैडम ने स्कूल रजिस्टर मे भाई की लिखाई भराने को कहा था?'

झल्लाकर विन्नी ने तड से वह पन्ना फाड डाला। 'जब तक रजिस्टर से पन्ना अलग नहीं होगा — इन्हे चैन थोडा पडेगा।'

विन्नी ने कुर्सी अधेरे मे खीच ली। कम्मो ने आख किताब पर गाड लीं।

बडे भाई थ, अदर चलकर आराम करो।

तारा अन्दर गयी तो भाई ने खाने को कहा। बोली, 'नहीं।'

'वजह?'

'डॉक्टर ने वजन बढाने को मना किया है। आप नाराजी की वजह मान रहे हैं?'

'नहीं। मैं कम्मो की बात कर रहा था कि एक म मन नहीं लगा — दूसरा रजिस्टर ले लिया। इसक अलावा तो कभी तग नहीं किया उसने, कि लडकिया जैसे सखी-सहेलियों से चख-चख करती हैं। वीडियो क पास बैठी गानों की सुरे मिलाती है। बेचारी बच्ची है, उसी पर गुस्सा। गुस्सा, मालूम है तुम्हारे लिए नुकसानदेह भी है?'

'नुकसान तो हो लिया। फिर, उस पर इतना बात बतगड?' बोली, 'मैंने इतना ही तो कहा था कि पैस के मामले मे लापरवाही ठीक नहीं। मा होती तो कहतीं कि नहीं कि अब कम्मो के भले बुरे की जिम्मेदारी किस पर है?

अचानक तारा के सामने एक साफ शफ्फाक सवाल तिर आया, 'जैसे अपने भले-बुरे के लिए जिम्मेदार तुम भगवान को मानती हो। और खाने से इन्कार भी क्या इसीलिए नहीं किया था कि तुम भगवान से रूठी थीं? तुमने उन्हे उलाहना नहीं दिया था कि वे खुद पर कितने उदार हैं? और तुम पर कृपा करने मे कितनी किफायत से काम लिया था

भगवान ने ?

और नहीं तो क्या ? — तारा ने कहा, और अंधेरे में भगवान के सामने खड़ी रही — जिस पर यह भी चाहते हो, तुम पर किफायती होने का दावा भी न करूं मैं ? आंसुओं से भरी आंखें लिये तारा नीचे कम्मो और विनै के पास बैठ गया।

ठीक-बेठीक के बीच

घड़ी मे पाच बजे थे। चित्रा और श्रीनाथ मे से एक को भी वहा न देखकर अमृता ने पैर जीने पर रखा कि सुन पड़ा, 'सिर्फ आप घटा लेट।"

अकेली ? क्यों ? — तुम्हे तो श्रीनाथ लाने वाला था न ?'

'फोन आया था कि लेने आऊ ? पर मैंने कहा, तुम खुद वक्त पर पहुच जाओ, काफी है।"

तभी गेट पर आवाज हुई, 'कॉफी हो या चाय, समझीं। शेर लोग किसी से पीछे नहीं रहते। ये तो जनाब, स्कूटर किसी और का है, नहीं तो बड़ा वक्त पर ही रफ्तार पकड़ता है।

फिर स्कूटर रखते हुए श्रीनाथ ने एक अदद आवाज ऊपर भी फेंकी, "ओ श्रीमती ऊषा जी ! तुम्हारी ननद तुम्हे मुबारकबाद देने आयी हैं। इनका बाकायदा स्वागत करो।

आवाज पर ऊषा और छोटा बालकनी से नीचे झाकने लगे। चित्रा और अमृता को देखा तो सीढ़ियों की ओर आकर ऊषा ने दोनों को गले से लगाया, "सगाई से पहले मैं आयी थी, पर दोनों म से एक से भी मुलाकात नहीं हुई। बड़ी व्यस्त है, मैंने ठीक शब्द चुना कि नहीं ?' ऊषा हसन लगी।

"काम-काजी ननदे कहो न भाभी।' चित्रा ने वाक्य पूरा करते हुए कहा।

"ऐसी बात नहीं ऊषा, मा को बारी बारी से देखना पड़ता है, तो एक भी नहीं आ सकी।

भाभी ने हसते हुए कहा, 'मा के पाचों बेटे ब्याहे गये। पाच बहुए हैं। बारी-बारी से पास रखकर सेवा करती रहगी। तुम अपना ठिकाना ढूढो ! नहीं अमृता दी ?"

दोनों ननदे एकसाथ हसी। फिर चित्रा ने धीरे से पूछा, "क्यों, ठिकाना कोई लिस्ट मे है, भाभी ?'

अर्थ जानकर भाभी ने कहा, 'तुम हामी भरो तो लिस्ट मे नाम-ही नाम लग जायेंगे।

बात हामी की चल पड़ी तो चित्रा ने पूछा, 'अच्छा, भाभी, निम्मो ने क्या हामी भर दी थी ?'

"निम्मो की छोड़ो तुम ! अपने भाई को नहीं जानतीं ? वह इस मामले मे क्या निम्मो की सुनता ? अरे, वह तो किसी की बात की परवाह न करे। फिर निम्मो की उम्र ही अभी क्या है ? अभी पिछले साल तो टेन-प्लस-टू मे आयी है। यह तो लड़के वालों का ही दबाव था कि मुह मीठा करा दो, सो हो गया।

ऊषा दोनों को साथ ले गयी, और अदर से कूजा मिश्री का टुकड़ा उठा लायी, 'लो, मुह मीठा करो।'

"न ! इससे मुह मीठा नहीं करेंगे हम। चित्रा ने मुह फेर लिया, "जबकि समधी, सुना है, मिठाई-भरी तश्तरिया ले गये हैं।"

"अरे बाबा बैठो तो " भाभी ने दोनों को जबरन सोफे मे धसा देते कहा।

"सास लो। पानी पिओ वह सब भी होगा।"

"क्यों नहीं होगा ? होगा — जरूर होगा।' कहता हुआ श्रीनाथ बैठक मे पहुचकर बहनों के कधों से सोफे मे ठीक से धसाने का नाटक करता-सा हसने लगा। फिर एकाएक गभीरता से भर आता वह बोला, "क्यों, चित्रा, कमरा अबकी कैसा जमा है ?'

अमृता ने गौर से देखकर कहा, "हा, लगा तो करीने से है। और यह सोफा, नया लिया है ?

बात पूरी होने से पहले ही श्रीनाथ कह पड़ा, "ऊषा ही कहीं से उठा लायी थी, फिर ठोक-पीटकर कारगर बना दिया। है तो कारीगर औरत " थोड़ी देर पहले वाली श्रीनाथ की गभीरता ने अब उपशमता का जामा ओढ लिया।

ऊषा किंतु भनक पा चुकी थी, अत चाय बनाते बीच कहा, "इनकी तो बातें ही ऐसी होती हैं — उठा कहा से लाना था ? सोफा भाई का है — रवि का "

श्रीनाथ ने फिर बीच मे काट दिया, "फालतू पड़ा था, सो यारों ने मार लिया।"

स्पष्टीकरण करते हुए ऊषा को कहना पड़ा, "तुम्हीं बताओ चित्रा, कि घर मे कोई चीज फालतू होती भी है ? यह तो रवि ने ही कहा, कि ऊषा, अब निम्मो के रिश्ते की बात चल पड़ी है, ऐसे घर मे लोगों का आना जाना रहेगा। यह सोफासेट ले जाओ। — और

वाकई चित्रा, तब से कोई-न-कोई आया ही रहता है। अब कृष्णा दीदी का लड़का ही शिमले से आया हुआ है, बटी। अपने बटी को तो जानती हो न ?'

अपना नाम कान मे पडने पर बटी भीतर झाका तो ऊषा बोली, "लो, वह आ ही गया।

अमृता और चित्रा ने एक नजर झाककर पाया, बटी लबा हो गया है।

ऊषा ने बटी से बताया, 'ये बडी हैं, अमृता दी । नहीं पहचाना ? पहचानोगे कैसे ? मैडम फैमिली प्लानिंग जो बन गयी हैं ?'

"पर चित्रा आटी को तो पहचान लिया।

"हा, उसको टी० वी० पर जो देखते रहते हो।" ऊषा ने कहा और बटी के हाथ मे लिफाफा देखकर उसे खोला, सदेस हैं। सदेस प्लेट मे परोसते हुए ऊषा बोली, 'लो दीदी — चित्रा तुम भी — मिठाई से ही मुह मीठा करो। फिर वह बटी की बात ले बैठी, "लड़की दिखाने के लिए दिल्ली बुलाया है। पसद आ गयी इसे, तो जल्दी ही शादी भी कर देंगे।

"अभी कम उम्र नहीं, बटी ?' अमृता ने जिज्ञासा प्रकट की। 'कम उम्र कहकर आपने चित्रा को तीस पार करा दिये, और आपको तो कुछ कह ही नहीं सकती मैं — पर चित्रा के तो कब की मेहदी रच जाती।' ऊषा ने कहा।

'चित्रा लेकिन वह माने तब न ?' ऊषा बोली, 'माने, जो कोई जोर डाले। मा ने जोर डाला, तभी आप मुझे देखने आयी थीं, यह आपका भाई तब बीस-इक्कीस का होगा। नहीं ?'

ऊषा हर बात के साथ हुकारा भरवा लेती है। नहीं तो अमृता जवाब देती — 'दूसरे भाई ट्रासफर होकर चले गये थे, और मा के पास श्रीनाथ की बहू की दरकार थी।

इसी बीच कौतूहलवश बटी कह पड़ा, "आटी, मैं तो अभी उन्नीस ही का हू न ?"

"उन्नीस का ही सही, पर पसद आने पर लड़की वालों को 'हा' तो कहनी ही पड़ेगी। अब अपनी निम्मो का ही लो, उन्हे पसद आ गयी, तो खुद ही पक्का करने की उतावली पड़ गयी उन्हे। और हमारी भी फिक्र कम हुई, कि चलो, लड़का अच्छा मिल गया।" ऊषा दामाद का फोटो उठा लायी। पल्लू से फोटो को पोंछते हुए, बारी-बारी से अमृता और चित्रा को दिखाते हुए कहा, "हमारी निम्मो से भी ज्यादा स्मार्ट है लड़का अभी और कई खूबसूरत तस्वीरें हैं — एलबम मे निम्मो साथ ले गयी है।

"निम्मो दिल्ली कब आयेगी ?" चित्रा ने पूछा।

"बस, यही ग्यारहवें के इम्तिहान के बाद। बाद में, यह महेन्द्र पर है, उसे बारहवां कराये न कराये। हम तो कहेंगे, तो तगी में सही, शादी की तैयारियां करनी ही पड़ेगी।

अमृता कहना चाह रही थी कि रुका भी तो "जा सकता है, पर ऊषा अब तक अपनी तगी का ब्यौरा देने लगी थी कि तगी तो अभी और सहनी है — इधर निम्मो के बोर्डिंग हाउस का बिल चुकाया, कि उधर छोटू और गोगी की नयी क्लासों की कॉपी किताबें-फीसें — और इस बार तो नयी ड्रेसें भी, कि पिछली ड्रेसें एकदम छोटी हो गयी हैं।

जिक्र आते ही ऊषा ने बटी से पूछा, 'गोगी नहीं दिख रहा। क्यों, गोगी को कहीं छोड़ आये हो ?

"हां, मार्केट में रुका है, मेरी पतलून प्रेस करा   लो, आ गया वह।

पर्दा हटाकर गोगी ने कहा, "बटी दा, पतलून प्रेस होने में अभी आधा घटा और लगेगा।"

श्रीनाथ ने लपककर गोगी को पीठ के बल घुटनों पर लेते कहा, "बच्चू! बटी जो आइसक्रीम और कोक दिलवाता है तुम्हें, इसीलिए उसके लिए तुम मार्केट के चक्कर काटते नहीं थकते।"

गोगी ने खुद को धीरे से अलग किया तो श्रीनाथ ने कहा, अकेले-अकेले जलेबी और सदेस भी उड़ाते हो ? और बटी जो तुम्हारे अमीर मौसी मौसे का बेटा है, तो लाड तो लड़ायेगा ही।'

बटी ने श्रीनाथ को मूड में देखा, तो एक लिफाफा श्रीनाथ को थमा दिया, "अकल, देखिए, अच्छी है।'

श्रीनाथ ने लिफाफा खोलकर देखा — 'जुराब!' देखते ही श्रीनाथ का रंग लाल हो गया। "तुमसे रुका नहीं गया गोगी ? कल इससे अच्छा, सदर बाजार से मैं ले देता तुझे

'यह मैंने लिया है! अच्छा नहीं तो वापस हो जायेगा अकल!' बटी ने श्रीनाथ के तपे और गोगी के सकपकाये-से चेहरे पर एकसाथ नजर दौड़ाते कहा।

"सदर बाजार से छः सवा छः में बढ़िया मोजा आ जाता।

"बुरा यह भी नहीं है अकल।   और साढ़े छः का ही! महंगा कहां है ?"

बटी ने श्रीनाथ का खास विरोध-सा करते कहा, "अकल, आप वाकई उतावले हो उठते हैं। फिर मौसी को पुकारा, "आंटी, आप इन्हें ठंडी कोक पिलाइए।

सुनते ही श्रीनाथ का उफान दब-सा गया, तो गोगी की दबी सास भी उभरी। इस तरह बात रफा दफा होने पर बटी ने कहा, "आटी ! मैं रवि मामा से पूछकर पता लगा लू कि महेन्द्र कब आ रहा है ?

"क्या कह रहे हो ? क्या महेन्द्र आ रहा है ?" ऊषा को जैसे हाथों-पैरों की पड गयी हो ?

पर श्रीनाथ ने ऊषा की बात पर ध्यान नहीं दिया, वह चित्रा से गोगी व छोटे की पढाई की बाते ले बैठा। फिर एकाएक क्या सूझा कि गोगी की काबलियत सप्रमाण देने को उछल पडा। कहा, अरे गोगी शाह ! अपनी बुआओं को, एक एस्से तो सुनाओ, अपना। वह श्रीमती गाधी वाला।

थोडा आराम करने दो उसे," अमृता ने कहा, "यही बहुत है कि ठीक से पढ रहा है वह।

'ठीक-बेठीक की यहा परवाह नहीं जनाब ! श्रीनाथ फिर शेखी बघारने की खुमारी से भर गया। 'न ही हमने थोडे-बहुत का ख्याल किया है कभी देखो, कि थोडी-बहुत चलते ही एक कोठी तैयार हो गयी। फिर इसी थोडी धुड मे यह छुटके शाह अवतरित हुए। और इस थोड-धुड के चलते ही निम्मो की सगाई हो गयी। इस ठीक-बेठीक मे ही उसकी शादी भी हो जायेगी। और यह ठीक-बेठीक तब भी चलता ही रहेगा।

अपने ऊचे ठहाके के बराबर का ही ज़ोरदार हाथ श्रीनाथ ने गोगी की पीठ पर आजमाया, और खुद ही उसे दरगुजर करने वाले अन्दाज मे गोगी को जैसे दिलेरी का सबक पढाते हुए कहा, शेर बच्चे, उठ ! उठ, खडा हो जा — सुना दे।"

पसोपेश मे पडा गोगी उठने को ही था कि श्रीनाथ ने उसकी कलाई कसकर उसे सीधा किया, 'ये हा, यह हुई न हिम्मत ! अब सुना डाल "

अमृता के दोबारा 'रहने दो' पर भी श्रीनाथ हिचका नहीं, बल्कि दुगुने उत्साह से कहा, 'दस मे से आठ नबर मिले हैं, इस एस्से मे इसे।"

गौरवान्वित होने जैसी भावना के वश उसने गोगी को सवेग झकझोरा 'क्यों बे ! यही एस्से पूरी क्लास मे अव्वल नबर पर रहा था कि नहीं ?

और गोगी को स्वीकारना पडा — 'हा , साथ ही अप्रत्याशित प्रोत्साहन से झेपने और झुकने के बावजूद" उसने उतावली मे एस्से की पहली पक्ति साहसी तोते जैसी उगल डाली, श्रीमती गाधी वाज प्राइम मिनिस्टर ऑफ इडिया।

'हा यह हुई न बात ! अब आगे आगे "

आगे सुनाते समय गोगी जहां जहां रुकता, वहां से बीच-बीच में सिरा टटोलकर उसे आगे बढ़ना पड़ता। और जब-जब ऐसा होता, उसकी बांह पर श्रीनाथ की जकड़ और अधिक कस जाती।

'वे पंडित जवाहरलाल जी की पुत्री थीं। बचपन से ही चतुर, देशभक्त, निर्भय और साहसी थीं। वह तेरह मास जेल में रहीं। श्री लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिकाल में वह सूचना और प्रसारण मंत्री रहीं। उन्होंने जनवादी नीतियों को आगे बढ़ाया। राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित अपने एक भाषण में उन्होंने कहा कि उनके रक्त की एक-एक बूंद भी यदि राष्ट्र के काम आये, तो उसे देने में वह नहीं हिचकेंगी। वह देश के लिए शहीद हुईं। इंदिरा गांधी अमर हैं।

निबंध की समाप्ति पर दोनों बुआओं द्वारा ताली पीटे जाने पर गोगी लज्जा और गर्व से झुकता गया। और बुआएं भी निश्चित हुईं कि चलो गोगी को छुट्टी मिली। पर शिक्षा प्रसंग की इति हुई नहीं, कि निबंध की इति से अति हर्षित होकर गोगी को श्रीनाथ एक नया हुक्म दे बैठा था कि गोगी वह चिट्ठी पढ़कर सुनाये, जो उसे लिखने को दी गयी थी। — 'राइट टू यूअर आंटी, थैंकिंग हर फार द गिफ्ट शी सैंट यू।'

चिट्ठी के प्रस्ताव पर गोगी हिचकिचाया, फिर साफ मना कर दिया, 'नहीं आता।'

'आता कैसे नहीं? अभी कल तो सुना रहे थे।' श्रीनाथ ने गोगी को साहस ही नहीं बंधाया, बल्कि बीच-बीच की सुर्खियां बतानी शुरू कीं, 'इट वाज ए ब्यूटीफुल वाच। इट रैंडड मी इन मार्ई एग्जाम्ज। एवरी फ्रैंड ऑफ माइन लाइक्ड इट।'

रुक-रुककर पूरे अधूरे वाक्य दोहराते हुए गोगी बीच-बीच में 'हर' को 'हिम' कह जाता। तब श्रीनाथ उसे 'हर' और 'हिम' का प्रयोग भेद — यानी जेंडर भेद बताने लगता कि 'हिम' से चिट्ठी अंकल को और 'हर' लिखने से आंटी को संबोधित की जाती है। पर बीच का पूरा मैटर ज्यों का त्यों प्रयोग होता है। और जेंडर को लेकर श्रीनाथ गोगी के साथ तब तक खपता रहा, जब तक उसने जेंडर भेद गोगी के दिमाग में घुसा नहीं दिया।

माहौल को हल्का करने के प्रयास में चित्रा ने पूछा, "वैसे कितने साल का है यह?"

'अक्तूबर में दस का हुआ हूं।'

गोगी के सिर से जैसे भारी बोझ उतरा हो। कुछ इस तरह हुमककर उसने घुटने

न्ते दब हुए मौन का लबादा उतार गिराया और मोना पैर पर चढ़ने लगा। श्रीनाथ भी नैस गार्गी से निवृत्त हो चुका था, कुछ इस तरह उसने बगल में दुबके हुए छुटके की ओर ताका, और अपनी हौसला बुलन्द आवाज का उपयोग करते हुए कहा, 'क्यों भई छुटके ! तुम बुआ को अपनी गिनती नहीं सुनाओगे ?

गोद में सिमटा हुआ छुटका बारी बारी से कभी बुआओं को और कभी श्रीनाथ को देखने लगा। श्रीनाथ ने एक मात्र आदेश देते हुए उसे गोदी से अलग किया और कहा, 'सुनाओ गिनती। यह सिक्का ! हां अठन्नी मिलेगी।" श्रीनाथ ने मुट्ठी खोलकर अठन्नी दिखायी।

छुटका हथेली पर चमकती गोल अठन्नी पर आंखें टिकाये कुछ देर देखता रहा, फिर धीरे धीरे गिनती शुरू की। गिनती के दौरान छुटका तीस, इकतीस पर ही पहुंचता कि फिर चालीस, पचास या सत्तर पर पहुंच जाता। ऐसा बार बार होता, और श्रीनाथ को दिमागपच्ची करनी पड़ती। लीक दर लीक करके समझाना पड़ता कि कैसे एक दशक के बाद दूसरे दशक पर पहुंचा जाता है।

अपनी मेहनत पुचकारे या अठन्नी का चुबक काम न आने पर श्रीनाथ का उत्साह जाता रहा। माथे पर न सिर्फ बल उभर आये, वरन् ऊषा को भी कोसे बिना नहीं रहा गया उससे। — "मैं दिन भर दफ्तर में सिर खपाता हूं और यह घर पर रहते हुए भी ध्यान नहीं देती। जबकि इम्तहानों में सिर्फ एक हफ्ता रह गया है। मेहनत न कराई गयी, तो इस पहली में कौन लेगा ? पूरा साल, और साल की फीस भी जाया जायगी। पर फीसें कौन मैडम की जेब से जाती हैं ?

ऊषा को लक्ष्य बनाकर कही गयी श्रीनाथ की उक्ति पर दोनों बहनें शर्मसार सी हो उठीं कि बातों की भाप ऊषा तक पहुंची तो क्या सोचेगी ऊषा, कि ननदें बैठी बैठी भाभी की बुराई सुन रही हैं ?

पर इस शर्मसारी को तब दूर किया बटी ने। वह महेन्द्र का प्रोग्राम बता रहा था कि कब आयगा। बटी की आवाज पर रसोई से ऊषा भागी आयी और पूछा, आने का तो पक्का है न ?

'बिल्कुल पक्का आटी

'कै बजे ? ऊषा व्यग्र हो उठी।

'यह नहीं मालूम।

'ले, तब क्या पता किया ?

आ जायगा।' श्रीनाथ ने बड़े सहज से हुए कहा — 'अभी सवा सात ही हुए हैं।

'पर सही वक्त तो मालूम होना चाहिए, तब फिक्र नहीं रहती।

'हम क्या फिक्र करना है, उसे गाड़ी चढ़ाना है ?'

बन्टी नैस फिर बीच-बचाव का कूद गया — 'आंटी, वैसे महेन्द्र का ऊपर आने को कुछ है नहीं। गेरे मामा के आते ही नीचे से हो जाना है। — अशोका में डिनर! और फिर शैफून शो में पिक्चर।"

'तुम्हारा प्रोग्राम तुम जाना, पर दामाद जब ससुराल आ रहा है, वह भी पहली बार तो ख्याल तो हर तरह से रखना होगा न कि कच्चापन तो मामला बिगाड़ देगा।

बन्टी ने ऊषा को चिढ़ाया — 'आआहा! कच्ची सगाई'

बन्टी को सुनाकर ऊषा सकुचायी सी कह आयी — 'बच्चू इस कच्ची में ही अभी सात महीने और निकालने हैं।

बटी के जाने के बाद भाभी, सगाई का पूरा किस्सा सुनाते हुए कान छूती रही और गिनाती रही कि किस-किसको क्या दिया। बोलीं — 'लोग कहते हैं आजकल दान दहेज नहीं रहा। पर यह देखो कि कितने आयोजन करने पड़ते हैं। और यह भी तो पैसे की ही आतिशबाजी है। फिर कितना तो अपनों को ही एकजुट करने में झेलना पड़ता है। दी,तुम तो कैंप पर थी, पर चित्रा से पूछो कि जेठ जी और ससुर जी को कितने तरलों से राजी किया था। पैरों में सिर देकर अपने रिश्ते का वास्ता दिया। कहा — जैसे मान से मेरी डोली घर लाये थे, वैसे ही पोती के भी महावर रचानी होगी — इससे पहले डोली उठेगी नहीं ? तो मुझ बेटा के हवाले किये बाबू जी ने 'अनरखी करते हैं मेरी। मैंने कहा — ' बेटे नालायक हैं, पर बहुएं तो नहीं ? मुझे बहुओं का कसूर बताओ ? "

श्रीनाथ घर की फूक-फाक छोड़कर ऊषा को दाद देने आने खड़ा हुआ — 'हौसला अफजाई करो मनने! करो! भाभी का पेट भरो। उसने कहकहा लगाया। फिर कहा — 'यह औरत इन मामलों में वाकई होशियार है।

इस फूफा के जवाब में ऊषा ने भी कुछ जोशीली आवाज में ही जवाब दिया — 'फिजूल की डींग बघारने से घर नहीं चलता, साहब जी! यह होशियार औरत ही है, जो आपसे गुजारा कर रही है।

श्रीनाथ जोर से मुट्ठिया भींचकर कसमसाया — 'यह जालिमाना बातें बन्द करो भामनी — तुम्हारी यह चाक चौबन्दी दामाद ने सुन ली, तो सब चौपट हो जायेगा।

दामाद का नाम आने पर ऊषा ने मौके का पूरा फायदा उठाते हुए स्टील का डिब्बा साधिकार श्रीनाथ को थमाते हुए डिब्बे को रसमलाई आदि से भरवा लाने का आदेश देकर श्रीनाथ को सीढ़ियों की ओर मोड़ दिया।

दामाद के आने और जाने के बीच का समय तब निहायत मधुर, शान्त और सुखद बना रहा। दामाद जब तक नीचे गाड़ी के साथ रहा, ऊषा रेलिंग से झांक झांक कर देखती रही। सब चले गये तो, वह सेटी पर आन बैठी। रसमलाई गोगी के लिए निकालने के बाद, घुटके का घुटने पर खींचकर उसे गिनाने लगी। मग में बची हुई कॉफी उड़ेला। दामाद को विदा करके श्रीनाथ ऊपर आया तो हल्की मौज में था। ऊषा को कॉफी पीते देखा तो कहा — 'इस औरत से जितनी चाहे कॉफी पिलवा लो।" फिर हाथों का गोला बनाते हुए कहा — 'खा खा के यह — या कुप्पा हो रही है मैडम?"

आप से कम खाती हूं। हां, बेकार खून नहीं जलाती — और कांटा भी नहीं बनती — आप जैसा "

'माने, मैं कांटा हूं! बुढ्ढ मगन? जानती है कांटा किसे कहते हैं? मैं फौजी हूं फौजी श्रीनाथ ने कहा और आनन-फानन में चुस्ती से सारे घर को फिर वैसा ही चुस्त दुरुस्त संवार दिया। बेड कवर की सलवट तक निकलना उसकी नजर से नहीं छूटा। जितनी देर ऊषा रसोईघर में रही, श्रीनाथ फुर्ती से फर्श पर बिखरा एक-एक तिनका चुन कर यथास्थान लगाता रहा। चित्रा का पर्स अलमारी में धरते वक्त दिखा — सेटी के नीचे गोगी का जूता। आग-बबूला होते कहा — 'यह जूता पटकने की जगह है? जूता श्रीनाथ ने शू रैक किसलिए है? कहते हुए शू रैक में जा धरा। फिर कि — "मुझे क्या देख रहा है अब? जा कपड़े बदल।

अबकी शायद गोगी से उतारी हुई टी-शर्ट सेटी पर छूट गयी थी। श्रीनाथ ने लक्ष्य किया, तो गरज पड़ा — अब यहीं डाल दी — यह टी शर्ट? और यहीं पड़ी रहेगी ये।"

आवाज पर ऊषा आयी और गोगी को अलमारी की ओर भागते देख कर टी शर्ट उसके हाथ से लेकर हैंगर पर टांगी, और गोगी की पीठ पर हाथ धरे उसे साथ ले गयी। अब सुन पड़ा — 'चलो, खाने बैठें।

श्रीनाथ ने फोल्डिंग कुर्सियां टैरेस पर खोल दीं। टैरेस की दीवार वाले होल्डर में एक नया बल्ब लगाकर — बटन दबाया, और कहा — 'चित्रा, तुम जहां चाहो, खाना वहीं सर्व किया जाये?

'नहीं, सब वहीं खायेंगे।

मेज पर दोनों बहनों ने देखा, स्टील की कटोरिया रोशनी मे चमक रही हैं।

गर्म सालन का भगौना ऊषा ने कटोरदान पर धरा — तो श्रीनाथ ने टिप्पणी की "यह ढग है ?

सब्जी कटोरदान मे भरी गयी देखते समय श्रीनाथ को खुली किताब आखों आगे लिए दिखा गोगी। "यह पढने की मेज है ?" फटकार के साथ ही किताब छीनकर बैठक में फेंक दी गयी — "खाने का वक्त होता है, तो किताब खोल लेता है, फिर पढाई के वक्त बजाता है डडके।" गोगी की दोनों बाहे झटक दी गयीं — "उठाओ प्लेट ?

प्लेट म सालन चपाती रखते समय गोगी के हाथ कापने लगे।

अब सब — एकात चुप्पी मे चल रहा था कि सहसा श्रीनाथ ने गोगी की प्लेट पर नजर दौड़ाई — "अभी एक चपाती भी नहीं खायी   एक और लो।

ऊषा ने उसे देखा — "क्यों मजबूर करते हो ?"

ताव खाता उठ रहा था श्रीनाथ, तो दिखा, कटोरी अभी सब्जी से भरी धरी है। खुद पर काबू नहीं पा सका। पूछा — "कौन खायेगा यह जूठन ?

ऊषा ने आनन फानन मे सालन की कटोरी अपनी ओर खींच ली।

और यह चपातिया ?

"यह भी खराब नहीं जायगी। ऊषा ने दो चपातिया और उठा लीं।

चित्रा बोली — "हा, बच भी जायेगी, तो सब सुबह नाश्ते मे ले लेंगे।"

"खैर   खाना जूठा पड़ा रहे, यह मुझ बरदाश्त नहीं।

'बरदाश्त' शब्द से भयभीत गोगी धीरे से उठ गया। अभी सुन पड़ा — अब जूठे बरतन यहीं छोडे जा रहे हैं।

गोगी सहमा सा बरतनों की ओर पलटा, तब तक बरतन उठाये जा चुके थे। अमता गोगी को साथ ले गयी किंतु श्रीनाथ की भभक ने वहा भी पीछा नहीं छोड़ा — आइन्दा, मेहमानों के पास कोई काम नहीं तुम्हारा कि अट सट ठूस लो, और खाना झक मारता रहे। मेहमानों के कमरे के पास से गुजरने की जुर्रत तक न करना कभी। समझे। कहते हुए श्रीनाथ कमरे मे पहुचा। ऊषा भी आयी और गोगी को अपने साथ सटाये-सटाये बोली — "समझ गया है, अब उसे सोने दो।

साक्षी जुटाने के तौर पर दोनों बहनों की ओर ताकते हुए श्रीनाथ बोला — "कोई कायदा कानून, मैनर्ज न कभी सिखाया — न सिखाने देगी।"

ऊषा से और संयत नहीं रहा गया। कहा — "जूठे बरतन नहीं उठाये न ? मैंने मुड

नहीं बनाना — इन्हें ! न ही कोस कोस कर खून जलाना है।

'खून तो तुमने मेरा जलाना है और इन्हें मुड्डु भी क्यों बनाना है ? तुम्हें दुरुस्त मुड्डु तो तुम्हें मिला ही हुआ है। श्रीनाथ देर तक चीखता रहा, और घर को बुहारता भी रहा। बैठक जमाता रहा, और फिर बैड रूम के बटन पर हाथ आन धरा। सहसा बल्ब जल उठा — और यहां भी दिख गया, मुंह के आगे खुली किताब लिए — पढ़ता गोगी। यह वही किताब थी, जिसे कुछ देर पहले गोगी से छीनकर श्रीनाथ ने इधर फेंका था। श्रीनाथ एकाएक चिल्लाया — 'लो — आकर देख लो अपने होनहार का सुघड़ताई कि कैसे इनकी पढ़ाई अंधेरे में ही चल रही थी ? ऊषा आ गयी तो कहा — 'पर कहां है फुरसत तुम्हें इधर ध्यान देने की ? तुम्हें तो ध्यान देना है, मेरी बेइज्जती करने पर।'

'यही है — इज्जत कराने का तरीका ? जोर से चीखना ? ऊषा की आंखें डबडबा आयीं — 'कि डर के मारे सबका खून ही सूख जाये ? — कहते कहते ऊषा की आवाज रुंध गयी। — 'तुम्हारे लिए ही चीखता हूं, बड़े होकर तुम्हीं पर थूकेंगे।

'पर तुम तो अभी से थूक रहे हो — इन पर ऊषा सिसकने लगी और सिसकते-सिसकते गोगी से चिपटती वहीं सो गयी।

देर तक श्रीनाथ सबको तकिया, गद्दी चद्दर ओढ़न आदि देता — बच्चों को उठाकर अलग सुला आया। पानी की टंकी भरने को छोड़ खुद बच्चों वाली खटी पर पड़ा रहा। बाहर हवा सनसना आयी। हवा में मिट्टी और पानी की गंध। श्रीनाथ फिर उठा और टैरेस की एक-एक चीज छज्जे तक खींच ली। पानी की टोंटी बंद करके आया, तो छोटे की घरघराती सांसों ने कान भारी कर दिये। विक्षिप्त सा बड़बड़ाता रहा। — 'पता नहीं ठंडा गरम क्या क्या खिला दिया है, कि घरघरा रहा है। खांसी बिगड़ गया तो ।

लगा जैसे बात ऊषा के कानों को छू गयी हो। अनमनेपन से उत्तर दिया — 'मौसम से है सब फिर दिन में वटी के गुब्बारों से भीगा था वह

नल पता नहीं कैसे फिर बहने लगा था कि चित्रा उठी। श्रीनाथ को बाहर जाते देखती खड़ी रही।

'क्या है चित्रा ? अमृता भी उठ बैठी।

पानी की आवाज खामोश हो गयी। चित्रा वापस बिछौने पर पलटी। "अभी श्रीनाथ सोया नहीं।"

बाहर हवा थम गयी। कुछ सोचने के बाद अमृता ने कहा — 'उसका मन उखड जाता है — तो देर तक अशात रहता है।"

दोनों बहनों को सुन पडी ऊषा की आवाज — क्या तग करते हो ?

'तग तुम करती हो।' श्रीनाथ था।

"तग कभी हुए होते तो जानते।

"जानता हू अपनी औलाद की दुश्मन हो ?'

'दुश्मन कौन है ? औलाद से पूछना। वह सोचते हैं यह पापा हैं — या प्रेत ?"

"सोचना तो नतीजे के बाद पडता है। — नतीजा जानती हो ‹

'नतीजा भी प्यार से निकलता है। मार से नहीं।

'प्यार का ही तो पछतावा है — और सुख भी ।

सुख ? मैंने तो तुम्हे तडपते ही देखा है।

श्रीनाथ की खदबगाहट मे सम्मिलित ऊषा की रुंधी आवाज भी रह-रहकर उठती, सिसकती और डूब जाती। — "यही अच्छा रहा, कि मरी लड़की तुमसे दूर रही अब भी इस घर मे — तडपना तडपाना देखने से पहले ही चली जाये भाग जाये ससुराल, वही अच्छा होगा

'लेकिन तुम भागकर किस ससुराल जाओगी ?

फिर आवाज नहीं आयी। छोटे की खासी — सुन पडी तो — चित्रा उठी अलमारी से पर्स निकाला विक्स ली, और छोटे के बिस्तर पर गयी। तभी कमरे का शटर ठेलती हुई ऊषा आयी। बिखरे बालों मे पिने खोंसी — कमर्डा की सार सभाल की फिर अलमारी से दवा निकाली — छोटे की छाती को घुटने पर लिया और खुराक हलक मे उडेल दी। छोटे का सिर पलोसते हुए — पता नहीं कब ऊषा, बच्चों की कच्ची उम्र के किस्से ले बैठी कि कैसे ठिकाने बेठिकाने रहते-रहते आज यह दशा हो गयी है इनकी।"जब से शादी हुई, यह दूसरा फैमिली स्टेशन है। कितने सालो बाद तो कहीं एक साथ रहने को मिलता है। तब बच्चे बचारे कब, कैसे कुछ सीखे ? इधर यह है कि बाहर ही रहे — तो बस अपना ही देखना होता था इन्हे — सारी सार सभाल सीख गय। अब यहा आने पर कुछ भी उन्हे अपने मन का लगता ही नहीं। अकेला रहने से कुछ स्वभाव भी वैसा हो गया है — एकपक्षीय-सा। ऊपर से दिल्ली के दफ्तर मे काम भी ज्यादा ही है। फिर थके-थकाये आओ। — और घर आकर बच्चों को भी पढाओ। पढाते हैं। — पर पढ़ाते-पढ़ाते खुद ऊपन लगते हैं। सारा काम एक के बूते का नहीं, समझाती हू कहती हू — चलो एक ट्यूटर ही लगा देते हैं —

मुह पर न सही, पीठ पीछे ही कहेंगे '

'तो क्या हुआ ? कहने से ही कोई जीत जाता है ?

'वही, कि तुम करके ही जीतोगी — पहले नहीं — '

'चलो आपने किया ? दाव पर लगा दिया सब पर — पर पल्ले हार ही पड़ी न ? मैं सिर्फ यही कह रही हू भाभी, कि दाव अगर हारना ही है, तो इसे कुछ वर्ष दूर ठेलकर हारा जाये।

'पर आक्रमक तो गिर्द छाय रहेंगे -

अजीब इकतरफा बात है

अजीब तो तुम्हे लगता है। कभी अम्मा से पूछो ? अम्मा से क्या — हमे ही कहते हैं दलाली खाते हैं नहीं तो क्यों बूढ़ी गायों को बाप हैं पर दुधमुही बछिया को ठिकाने लगा रहे हैं। अब बताओ ?

'बताना यही है, कि निडर रहो। और बिना ढाल कवच के, अपनी राह चलते जाओ। श्रीमती गाधी की तरह।

और गोली खाकर, सो जाओ, उनकी ही तरह।

'बदनामियों के डर स, फासी के फन्दे म सिर देन से अच्छा तो गोली खाना ही होगा ? नहीं ?

इस पर कोई कुछ नहीं बोला, जैसे उपरोक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो चुका हो, पर स्वीकृति चिह्न लगाये जाने मे आड़े आ रहा हो — ठीक-बेठीक के बीच का कुछ।

आखे

मेरी आखों के सिलसिले म मुझे मरे बॉस ने कहा था कि — "आखों मे जलन है, तो "ाक्टर दवा डलवा आइए।" — जब मैं सडक तक आ गयी, तो सोचा कि अगर डॉक्टर मिल "ाये तो मैं आखे टैस्ट भी करवा लू। सडक के क्रॉसिंग पर रुकते वक्त लगा कि दिन पूरी रौनक से शहर पर छाया हुआ है। मैंने आवाज दी — 'स्कूटर' —एक काले झडे वाली कार सामने से निकलती हुई कह गयी — "हड्ताल है — स्कूटर टैक्सी नहीं मिलेगी।" अचानक मुझे अहसास हुआ, सडकें अपेक्षाकृत शात हैं, और उन पर तेज रोशनी है। सूरज की उजली किरणे पैरों तले जैसे बिछी हैं। और — खुद "िन हसी खुशी मे अपने तमाम काम रोशनी रहते रहते खत्म कर डालने की उतावली मे है। मैंने इस बीच क्रॉसिंग पार करते हुए अपने को तेज रोशनी का कायल मान लिया था। ये भी कि इन्सान के तमाम कार्य कलापों के पीछे सिर्फ प्रकाश ही काम कर रहा है। प्रकाश ही हमारी आखे हैं। इसकी वजह यह थी कि उससे पहले हमेशा मु"े धुधला धुधला सा अधेरा प्रभावित किये रहता था। दिन हो या रात,एक ऐसा झुटपुटा मुझे प्रिय था कि जिसमे पक्षियों का कलरव घुल मिल गया हो या फिर धुधली-सी दुपहरी हो, जो अपने सन्नाटे मे और भी गहरी और उमस हो गयी हो। लेकिन वह कायापलट परसों मेरी पडोसिन ने किया, कह कर कि — आप शाम को या रात को लिखने का काम न किया करो।" 'क्यों ?" मैंने पूछा तो उसने बताया — "आपने अपनी आखे नहीं देखीं ?" उसने मरी आखों म झाकने की कोशिश की — लगता है यरकान हो गया है ?"

"नहीं, वह तो मेरी आखों का रग ही पीला सा है।" मैंने पडोसिन की बात काट दी।

"तो ये लाली कैसी है ?" कहते हुए उन्होंने मेरी पलक उघाडीं। कहा, "आख तो सारी खाई पडी हैं।" पडोसिन क फैसले को मैंने मान लेते हुए कहा, "पिछले महीने से आखों की जलन तो कुछ बढी है, पर क्या करू ?" मैंने लाचारी बतलाई।

"क्या करो ? किसी अच्छे-से डॉक्टर को दिखाओ !

'वह तो मैं भी सोच रही हू मैंने उसे ये नहीं बताया कि डॉक्टर छुट्टी लेकर आराम करने को कहेगा, तो मेरा हर्ज होगा। अगर मैं उसे अपने उस सपने की बात बता देती कि जब मैं अधी हो गयी थी, तो वह जरूर हसती। पड़ोसिन के चेहरे की याद करके मुझे आखों की इतनी तेज जलन म भी हसी आ गयी। हालाकि जिस दिन से सपने मे अधेपन का अनुभव हुआ था, उस दिन से आखो की रोशनी के पक्ष को मैं गभीरता से ले रही थी। शायद यही वजह थी कि अब आखों पर मनोवैज्ञानिक रोग भी सवार हो चुका था। या फिर आज की दोपहर का यह एक प्रभाव था कि आखे लाल होकर जल रही थीं, या फिर सडक इतनी लबी हो गयी थी कि उस पर चलते चलते मेरे बदन का पानी पसीना बन रहा था। और वह पसीना टपाटप मेरी आखों मे चू रहा था। असल मे लुडलो कैसल रोड की चढ़ाई है ही एसी मैंने अपने को समझाने की कोशिश की और सडक छोड़कर क्रिश्चियन स्कूल के गेट की ओर मुड़ गयी। स्कूल के पीछे टीचरो के क्वार्टरों के पास एक टीचर बैग झुलाए आ रही थी। "हैलो ! आप आप किससे मिलेगी ?'

'किसी से नहीं। मेरी बच्ची शायद आपसे पढ चुकी है !

"क्या नाम था ?'

वह टीचर रुक गयी। मैं उसकी सफेद किनारी वाली धोती पर निगाहे गड़ाये थी। सोच रही थी — आखे खराब हों तो सफेद रग अच्छा लगता है।

"क्या नाम था ?" टीचर ने मुझे ध्यान से देखा।

"नीना — बस पाचवे तक पढी थी, वह अब क्वीन मेरी मे है।

'वैरी नाइस " टीचर ने होंठ फैलाय।

जब वह चली गयी तो मैं उसके थके हुए चेहरे के बारे मे सोचने लगी, फिर उसके होठों पर फैली आरजी हसी के बारे मे । मैं जैसे ही सोचती हुई मुड़ी, मेरा एक पैर क्यारी के पास पडे हुए पत्थर स टकरा गया। मैं गिरते-गिरते बची और मैंने घूमकर देखा कि कोई देख तो नहीं रहा था। एक भूरी बिल्ली मुझे दीखी जो कि बायीं ओर से निकलकर पीछे के क्वार्टरों की ओर भाग गयी थी। मैं बगीचा पार करने लगी। बगीचे म झड़ी हुई पत्तियां जब पैरों तले पड़तीं, तो अजीब-सी खामोशी के भय होने का अहसास होता। और साथ ही परिंदों के शरीर पर ध्यान जम जाता। बजरी की सड़क के पार पेड थ। और आगे स्कूल की बिल्डिंग थी। उस वक्त शायद रिसेस् रहा होगा। क्योंकि लड़कियां

झुडों मे बटी हुई थीं, और बाते कर रही थीं। कुछ लड़कियां पेड़ों की छाव मे गोल घेरा बनाये मुह चला रही थीं। नीली ट्यूनक के अदर से लड़कियों की सफेद ब्लाउज वाली पीठ दिख रही थीं या कभी उनके भोले चेहरे, और बड़ी बड़ी आखे दिख जातीं। रिबन मे गुथी हुई उनकी चोटिया इधर उधर हिल रही थीं। — इनमे से कितनी लड़कियों ने आज अपने मा बाप से रिकॉर्ड-बुक, रबर पैंसिल या डिसैक्शन बॉक्स के लिए पैसे मागे होंगे। और इनमे से कितनों को मिले होंगे पैसे। और न मिलने पर कितनों ने आखों म आसू भर लिये होंगे। कहकर कि — 'मेरा क्या जायेगा, सालाना इम्तिहान है — रिकॉर्ड-बुक कम्पलीट न हुई तो खुद ही फेल होना पड़ेगा। इनके माता-पिताओं ने तब किसी तरह इनकी माग पूर्ण की होगी। — जो हो अब इन लड़कियों की आखों म न आसू हैं, न निरीहता, बल्कि एक ऐसी बेफिक्री है जो — एक खास उम्र की याद दिलाती है जब हम लोग स्कूलों मे होते थे। लेकिन जब दिल्ली आये, तब हम स्कूल और कॉलेज के चौहद्दी से बाहर थे। स्कूल अगर आना भी होता था तो किन्हीं समस्याओं का निदान करने हेतु। कई बार घर म झगड़ा होता था। 'मन्न क्यों नहीं कुछ करता? " और मैं खुद इस बात को बढ़ाकर उसे घर से बाहर काम की तलाश मे जाने को कहती थी। "एक दिन जरूर जाऊगा, लेकिन तुम लोग कह-कह कर जब तक छील न लो, तब तक कैसे जाऊगा?' — 'तब तक नहीं, तो भी कहीं तो जाओ, भगवान के लिए या मुझे मेरे हाल पर छोड दो।'

"मैं भी यही चाहता हू। मुझमे बस इम्पलस की कमी है — वह पूरी भर जायेगी तब तक और — ऐसी लताड़ों के दौरान जब क्रिश्चियन स्कूल मे नौकरी की तलाश मे आना होता था, तो मन मे घर मे अलग हो जाने का सपना पला करता था। स्कूल मे स्थित क्वार्टरों मे आकर रहने का सपना। फिर शाम को जब हम सैर को इधर आते तो सेसिल होटल मे रुककर कोई पेय जल पीते। उस वक्त सेसिल होटल एकदम सागर जैसा शात और विशाल दिखता। अब वहा सेट जेवियर स्कूल की तिमजिली बिल्डिग है।

स्कूल से बाहर निकलते ही दिखा राजभवन। एकदम बदला हुआ सा लगा। फिर सामने वाले गिरजे के साथ साथ सड़क पर ऊची-ऊची दीवारे खडी कर दी गयी हैं। ये भी अजीब लगा। सड़क जैसे इन दीवारों की वजह से ही लबी हो गयी हो। हा, सिर्फ नोटीफाइड एरिया कमेटी की बिल्डिग वहीं की वहीं है। बिल्डिग के बाहर खुदाई करते मजदूर थककर जगले के सहारे खडे हो गये थे। मैंने सोचा था, इनसे ही अस्पताल का रास्ता पूछ लूगी। लेकिन इससे मुझे उनके आराम म खलल पड़ने की सभावना दिखी। बा"

म जब एक छात्र जैसा दीखने वाला लड़का पास से गुजरा, तो उसे मैंने ठहरा लिया।
"सुनो, यहा पहाड़ी के लिए एक राह है ?"

"हा है, वो रही।" उसने हाथ के इशारे से बता दिया।

स्कूल की कुछ लड़किया भी शायद पीछे-पीछे आ रही थीं।

आपको कहा जाना है ?" एक ने पूछा।

"हिंदू राव अस्पताल

"वह ऊची बिल्डिंग दीख रही है न ! वही है।

मेरी नजर उपर उठ गयी, जहा हल्के रगो वाली एक बिल्डिंग थी।

" यहा से कितनी दूर पड़ेगा ?" मैं लड़कियो को देखन लगी। वे सब भी मुझे दखन को रुक गयी।

'कोई खास दूर नहीं — बस पाच-सात मिनट लगेंगे।

इसके बाद पाच मिनट तक वे मर साथ साथ चलती रहीं।

अब और कितना है ?" मैंने पीछ रह गयी लड़की से पूछा।

"अभी और थोड़ा है। —" एक छोटी लड़की बोली।

'तुम क्या गेज स्कूल की हो ?

"नहीं, हम सब बेनीप्रसाद मे हैं।" अगली लड़किया रुककर पीछे देखने लगीं। मुझे याद आया दो बार मैं इस स्कूल म भी नौकरी को पूछते हुए आयी थी। तब यह नया नया खुला था। मुझे खु' पर हैरानी हुई — कि मैं लड़किया की पोशाक दखकर भी उन्हे पहचान क्यों न सकी। दोबारा जब ध्यान दिया, तो वह पोशाक मटमैले सलटी रग की लगी, या हो सकता है,पोशाक घिसकर अपना रग खो बैठी हो। जैसे इसान अपनी रगत खो बैठता है। इन ख्यालों से छुटकारा पाने के लिए मैंन लड़की स पूछा — "तुमने ता कहा था पाच-सात मिनट लगेंगे ?" मेरे सवाल पर वह लड़की मुस्कराई — "अगर तेज तेज चलो तो इतना ही वक्त लगेगा।" उसकी बात पर आगे वाली लड़किया जैसे मुस्कराने लगीं।

"तेज-तेज तो सिर्फ तुम ही चल सकती हो ?" वे चारो लड़किया फिर अपने बस्ते झुलाती हुई रुक गयीं।

"तुम कौन-सी क्लास म हो ?" मैंन बड़ी लड़की से पूछा।

"नवीं मे।"

"और तुम ?"

"पर अठन्नी में ! और यह सत्तर में ... पर चालीस में ...!" वह सबकी कमाई बताकर हँसने लगी, फिर कहा — "बस थोड़ी दूर ही है।"

दूसरी ने कहा — "हम लोग यहीं तक जायेंगी। यह रहा अस्पताल !"

जब वे पलटीं तो मैं नख शिख से उनकी पोशाक का निरीक्षण करने लगी। इस क्षण में अक्सर मुझे अपने हिन्दुस्तानी होने का अहसास होने लगता है। हिन्दुस्तानी फैशन से कसीदे, सितारे, बैग, जूते और न जाने क्या क्या आँखों के आगे घूम जाता है। घरों में होने वाले हंगामे और झगड़े ! गर्म कपड़ों का लाना और बाल-बच्चों के ताने। बिना ही पैसों की नेक सलाह ! अगर तुम काम पर लग जाओ ...। रोज-रोज की वही बात। पता नहीं कितने लोग आज भी सड़कों पर इन कपड़ों की वजह से घूम रहे होंगे — सिनेमाघरों के बाहर ... या कॉफी हाउस के बाहर, — शायद रात लिये व रात बिना पैसे होंगे, जबकि घर वाले उन्हीं की इन्तजार में चारपाई पर करवटें बदलते रहते होंगे। घर वालों को कई-कई बार कितने तरह के ख्यालों ने बुरी तरह घेरा भी होगा ... लेकिन उनमें से कुछ लोगों की ही आशंकाएं सच निकली होंगी। बाकी लोग आश्वस्त हो गए होंगे। यानी कि 'कुछ हो ! हमारी बला ... गुलामी नहीं करता !' इसी तरह ... अब शायद मैं भी आश्वस्त हो चुकी हूं। सब कुछ मदन के हाथ में छोड़ दिया है मैंने। कुछ भी बुरा नहीं लगता। मेरा काम है सिर्फ तनख्वाह लाकर दे देना। मदन चुपचाप खर्च निबटाता रहता है। कभी कभी पड़ती है तो विस्फोटक स्थिति पर कहा सुनी होते होते बात बढ़ जाती है। ऐसे वक्त में सबसे छिपाकर अपने को कोसती हूं ... क्योंकि चाहकर भी मैं घर को इतना कुछ नहीं दे सकती, जो कि एक मां को देना चाहिए। लेकिन मैं अपनी भावुकता में सिर्फ घुट सकती हूं। फिर भी नीना और सुते को जो कुछ चाहिए होता है, वे मुझसे नहीं मांगते। हर चीज के लिए पापा को याद करते हैं। मदन कहता है कि 'पापा क्या करे, अपना सिर फांसी में दे दे ?' ... ये सारी बातें हर रोज दोहराई जाती हैं। चुपचाप अम्मा इन्हें सुनती रहती हैं या शायद कुढ़ती रहती हैं। खास तौर पर छोटे मोहन के लिए — जब वह अम्मा से भी छिपकर, भाई से भी छिपकर हथेली मेरे आगे बढ़ाता है — 'भाभी पैंतीस पैसे ! चालीस पैसे ! ... सिर्फ एक अठन्नी।' ... उस वक्त मैं कुढ़न की पहचान आसानी से कर सकती हूं। मैं कट सी जाती हूं। मुझे सारे पैसे घर में नहीं दे देने चाहिए ... ये भी मैं तब सोचती हूं। अम्मा ठीक ही कहती हैं— 'मदन को तुम जितना दोगी, वह उतनी ही खर्च कर देगा।' यह सुनकर फिर अम्मा की जगह उलटा मदन को कुढ़ेगा और पूछेगा— 'आज रात को क्या बनेगा ?' ... मदन का मुंह लटक जायेगा ... और वह सिगरेट

फूकता रहेगा। 'मुझे क्यों पूछते हो ?' मैंने आजकल अम्मा की ओर देखकर जवाब देना शुरू किया है। लेकिन इन दिनों मदन मेरी इस प्रवृत्ति से चिढ जाता है। 'तो मुझसे क्यों पूछता है ?' मैं भी चिढ जाती हू । 'जो भी सस्ता हो वही ले आओ।'

'सस्ता कुछ भी न हो तो न लाऊ ?

नहीं ला सकते, तब तो मुझे डूब मरना चाहिए। बताओ क्या करू ? इस तरह शुरुआत से ही बिगड जाती है बात। मदन कहता है— 'इतजाम अब खुद ही किया करो। इन छुट्टियों मे राशन पानी डाल लेना। समझीं? वह सिगरेट बुझा देता है। शायद खुद ही बुझ जाता है।

'और कुछ ? मैं भी पूछकर बुझ जाती हू। 'कुछ नहीं वह किसी खास हौंस से उठ जाता है।

मैं भभक पडती हू 'तब इस वक्त बख्श दो। बॉस के काम मे गलतिया कर बैठूगी किसी तरह से तो जीने दो ना!

इन बातों का शायद कभी अन्त न होगा। सोचते ही मैं वहा से हिली।

"आप क्या राह देख रही हैं ? मुझे चौंककर बढते हुए देखकर किसी ने पूछा।

'मैं ? हा नहीं मैं ओ पी डी की राह ढूढ रही थी।

'वह एक बजे बन्द हो जाता है, आप मैडिकल सुपरिटेंडेंट के पास जाइए।

"उससे क्या होगा ?

'वह आपको कोई दवा दिलवा देगा। औरतों का लिहाज करते हैं "

मैंने उस आदमी की सूरत देखी। उसके बाल खिचडी हो रहे थे और चेहरा चिकना था। उसके पीले दात बाहर झाक रहे हैं। धीरे धीरे वह आदमी चला गया, तो मैं बाहर आ गयी। लिहाज। अब मैं शायद लिहाज के बारे मे सोच रही थी। क्या असल मे कोई किसी का लिहाज करता है ? 'लिहाज' नाम की चीज आज किसमे है ? और लिहाज की कोई ख्वाहिश भी क्यों करे ? मुझे यह सोचकर खुशी हुई कि उन्नीस वर्ष से लेकर अब तक की उम्र मैंने झूठे लिहाजों मे पडकर व्यर्थ नहीं होने दी। और अब तो मैं खुद बन्लिहाज हो गयी हू। मन मे सैकडों बार आता है कि सबसे साफ कह दू — कि वे लोग खुद अपने लिए कुछ करे। खास तौर पर आखों वाले सपने के दाम। वह पता नहीं क्यों, तब से मैं तेजी से अधेरे मे ही डूबते जाना महसूस करती रही हू। यह जानने के

बाद कि अधापन क्या होता है, अधकार का एक बहुत बड़ा विस्तार मेरे सामने खड़ा होने लगता है। उससे मैं इतना ज्याा डर जाती हू कि कई मौकों पर मैं शाय अपने से ही चौंककर इधर उधर देखने लगती हू। हा यही वजह रही होगी कि एक और व्यक्ति जब मेरे पास से गुजरा, और मैंने उसे अपनी ओर देखकर रुकते पाया तो मैंने क्षण भर बा ही दूसरे पथ पर चलना शुरू कर दिया। सहसा उसने पूछा — "आपको किधर की राह चाहिए?"

'राह?' मुझे अचानक सूझ गया। अब दफ्तर वापस लौटने से बेहतर होगा, भाई के यहा चले जाना। भाई का घर पास पड़ता है। कल आसानी से यहा से सुबह-सुबह अस्पताल आ सकूगी। यह तय करते ही मैंने पूछा — "सब्जी मडी को कौन सी राह जाती है?

'वो उधर है

'एक बस भी तो जाती है?" मैंने अपनी जानकारी पक्की करनी चाही।

"हा। अड़तीस नबर। पर उसके लिए घटा-पौन घटा रुकना पड़ता है। पैदल यहा से दस मिनट का रास्ता है।

मैंने एक नजर म ही उस व्यक्ति का हुलिया देखकर अपने को सड़क पर डाल दिया।

आपको शाय मैडिकल सुपरिंटेंडेंट से काम था?

'नहीं।' मैंने उस व्यक्ति पर एक सरसरी नजर डाली और आगे बढ गयी। वह सलेटी रग की कमीज और भूरी पतलून पहने था। उसके सिर पर छोटे छोटे मेहदी रगे बाल थ। मुझे उसकी भूरी आखों मे हल्की सी काइयापन के पुट का आभास-सा लगा। वह अचानक बताने लगा — 'मुझे मेहता से मिलना था। वह व्यक्ति अपना काम और लड़की की ताजी फिक्स हुई जॉब के बारे मे अब सब कुछ बताने लगा था। मैं जब उससे पीछा छुड़ाने के लिए थोड़ा फासला बढ़ाने के लिए जल्दी मे आगे बढ़ी तो एक कार तेजी से मेरी बगल से निकल गयी।

वह बोला — 'यह घुमावदार सड़क है। सवारी के आने का पता नहीं चलता। वह इस तरह फिर मेरे पास पहुच गया।

उस वक्त मैं सड़क के किनारे किनारे चल रही थी। उसने अपनी बातों का सिलसिला नये सिरे से जमाने का उपक्रम शुरू किया ही था कि अचानक एक और गाड़ी मेरे पास से सरसराती हुई निकल गयी। उसने कहा — 'इसे मुझे दे दीजिए। और अपना

हाथ मेरे बैग की ओर बढ़ाया। मुझे उसकी मूर्खता पर, जो वास्तव मे कांइयापन रहा होगा, मन मे हसी आयी। और मेरे हाथ की जकड अपने बैग पर और बढ गयी।

'क्यों, इसमे कोई खास खजाना है, जो आप डर रही हैं ?"

"नहीं, मैं डर नहीं रही। खुली रोशनी मे कैसा डर ? मैंने कह दिया। फिर भी मुझ उसका वह मूर्खतापूर्ण प्रश्न बेतरह कचोट रहा था। मैं सोच रही थी, खजाना है तो भी, और नहीं है तो भी, क्या यह आदमी सोचता है कि मैं अपना बैग उसे थमा दूगी ? या वह मुझसे सबध बढाना चाहता है? कितना बेवकूफ इसान है! क्या बैग को वह इतनी भारी चीज समझता है, जो इसान उठा नहीं सकता? फिर भी ढोंग दिखा रहा है। 'लगता है, अपने जीते-जी, अपने यहा आपने कभी किसी को अपना बोझ उठाने नहीं दिया ? मैंने जैसे उसकी इन्क्वायरी की हो।

"कतई नहीं। उसने बडे आराम से कहा, जैसे मेरे व्यग्य या परिहास का उस पर कुछ असर न हुआ हो। इस तरह वह अपने परिवार के बारे मे बताने का मौका पा चुका था। और बता रहा था कि उसने कैसे सघर्ष करके पैर जमाये। और अब उसकी दो बेटिया अपने पावों पर खडी हैं। रही पत्नी, सो वह गृह सेवा मे रत, और मैं राष्ट्र-सेवा मे। मैं सोच रही थी कि वह सिन्धी है। दौड-धूप और तिकडम म माहिर है। इसलिए ये मुलतान का रहने वाला भी हो सकता है। लेकिन मैंने ये बात पूछी नहीं। क्योंकि मैं उसे बातचीत का और मौका देना नहीं चाहती थी मेरे इस रवैये को शायद उसने भाप लिया था। और अब वह कुछ-कुछ हतोत्साहित हो चुका था।

अब और कितना चलना है ?" — मैंने निर्विकार लहजे मे पूछा। सुनते ही एकाएक वह विनम्र हो आया था — अब बहन जी, आप अगर धीरे धीरे चलेंगी, तो तो वक्त लगेगा ही।"

मैं अब तक काफी थकने के बावजूद अपने को नियत्रित रखे हुए थी। क्योंकि भाई के यहा मुझे पहुचना जरूर है। और बस फिर किसी आर्थिक स्थिति की चिंता नहीं रहेगी। न वहा आपसी तनावों का डर होगा। अगर ये डर और चिंता न होती तो ? मैंने सोचा, मेरी नजर अचानक पहाडी पर छाये हुए धुंधलके पर जा रुकी। मुझे याद आया, जब मैं पेडो की छाव छाव अस्पताल की पहाडी पर चढ रही थी। तब भी धूप जैसे मरी-मरी सी छाव की गोद मे लेटी थी। और अब भी उजाला होने पर भी पहाडी पर फैली हुई झाडिया और बीच से कटी हुई सडक किसी सुखद यात्रा की याद दिलाती जा रही हैं, जैसे सजोली से शिमले की यात्रा की याद दिलाती जा रही हों। काश, आज की ये यात्रा उन्हीं दिनों की

तरह बेफिक्री मे भीगी होती। और ये उतनी ही सुखकर और सबी होती। सजोली और शिमले की स्मृति ने मुझे जैसे अचानक ताजा कर दिया था। तभी उस व्यक्ति ने पास आकर कहा — "यह रही सब्जी मडी ! मैं इधर जाऊगा। और आप सीधी पीपल वाली गली तक चली जाना।"

ओह ! शुक्रिया !" मैं उसी ताजगी मे जैसे अब भी गद्गद थी। वह 'शुक्रिया' सुनकर ठहर गया। 'देखिए, आप अगर बुरा न मान तो अपन वम तक चलकर पानी या चाय पी ले।

मेरी सारी प्रफुल्लता काफूर हो गयी। मुझे अचानक काठ मार गया। इससे पहले, मैं सिर्फ, चिंता या अनिश्चितता को ही लेकर उलझ रही थी। और उस व्यक्ति, जिसने कि अपने को मिया वाली का बताया था — के सघर्ष की मन-ही-मन सराहना भी कर चुकी थी, और मुझे उम्मीद बध रही थी, कि किसी-न किसी इलाके के लोग, हिंदुस्तान का नाक बचाने को कोई तेज आदोलन चलाये रखेगे। तब और लोग इन लोगों की आखों म देखेगे, भले ही ये लोग बैकवर्ड हैं, भले ही शुष्क-शुष्क ! पर, तब हिंदुस्तान का नक्शा जरूर दूसरा ही होगा ! — लेकिन अब मुझे अपनी ही बुद्धि पर तरस हो आया ! इतना कि शायद आखों के धोखे का लिहाज रखना भी जरूरी हो चुका था। मैंने अपना सरक्षण आप करते हुए कहा — "मैं घर से बाहर चाय-पानी नहीं पीती।

'ये आपकी मर्जी है। मैंने तो आपको परेशान हालत म देखकर — इसानियत के नाते कहा था।" यह कहकर उसने अपने को एकाएक पूरा अपा सिद्ध कर दिया था।

भाई के घर की दिशा म मेरा एक कदम नहीं बढ़ा। उन्नीस-ए के बस-स्टाप की ओर घूमते वक्त नजर एक बार उसी व्यक्ति पर पड़ी। मुझे लगा, अभी हमारे सामने सिर्फ आर्थिक चिंता की ही समस्या नहीं है, पता नहीं कितनी विकट समस्याए और हैं, जिनके लिए हम आखों की जरूरत है। लकिन, जिसे आखों की तत्काल जरूरत थी, वह व्यक्ति तब काफी दूर जा चुका था।

नया युग पुराना युग

बस स्टाप से घर तक पहुचने मे वह रोज दस मिनट लगा देती है। अत धीमे कदमो स आज भी घर की राह पर अर्चना बेराक चलती गयी। अचानक याद आया कि आज सुबह डीबेट की प्रतिलिपि घर ही भूल गयी थी। और बस जब चल पडी तो याद हुआ था कि आज का पूरा दिन अब व्यर्थ जायेगा। लेकिन देर तक इसी बात मे उलझे रहने के बाद निदान मिल गया। यानि डीबेट किसी और 'विषय' पर आधारित हो जाये तो ? जैसे — ' सुकरात ?

— सुकरात क्या आत्मवीर था ?

— और — इस विषय का प्रतिपादन करने के बाद उसे आत्मसतोष सा मिला — कि आज का पूरा दिन बेकार होने से बच गया — क्योंकि एक नयी सुलझी हुई कड़ी हाथ आ गयी थी। — यानी सुकरात आत्मवीर था। —

सोचते सोचते वह घर की सीढियों तक बढ गयी। गेट का एक दर मालती के पत्तों स घिरा हुआ था। अलग कोना सा, अच्छा लगा। फिर धीरे धीरे फाटक के अन्दर घुसी, लेकिन कमरे म पैर देते ही लगा, आत्मसतोष की करेट और मालती के खिले हुए फूल जैसे मर गये हों।

जाने कैसी मुर्दा मुर्दा जिंदगी है! उसने दबे पाव इधर उधर झाका। उस वक्त बैठक मे कोई न था।

— कुछ आवाजे आ रही थीं। — पिछले कमरे से। मजु और अरुण रेडियो के गीत के साथ लय मिलाकर गा रहे थे।

ये — हा, यह घुघरुओं की आवाज है, इसलिए नृत्य-चर्चा हो रही है अब। —

— ये सब अर्चना के सामने नहीं होता, फिर भी अर्चना को मजबूर करता है कि वह सोचे, कि यह वही अरुण है, कि जिसके लिए सोच-सोचकर वह झुलस रही है ? — कि लड़का घर मे पडे पडे बेजार हो उठा होगा ? — कि जिसकी खातिर वह अपने को —

अभागा, कहकर कोसती रही है।

— आखिर अरुण की मानसिक स्थिति कब उलझी थी ? — उसे कुछ भी याद नहीं आता ? इतने बरसों बाद क्या याद आ सकता ? — अब यानी जब उसे बी० ए० पास किये एक साल हो गया है, इससे दो साल पहले एफ० ए० की कम्पार्टमेंट, एक साल पहले एफ० ए० उससे दो साल पहले दसवा, और नवीं क्लास का भी साल जोड लिया जाये, जो आठ साल बनते हैं। तेईस मे से आठ साल घटा दिये जाये तो बचे पद्रह। — हा, — वह जब पद्रह-सोलह का था, तो वह खोया खोया सा रहने लगा था। जैसे फिक्र मे गल रहा हो। उन दिनों उसके पापा का व्यापार डूब रहा था। यानी अर्चना के पति प्रभात व्यापार के डूब जाने के बाद भी बहुत कुछ छिपाने की कोशिश कर रहे थे। अरुण ने एक बार दबे स्वर से प्रतिवाद किया था कि वह काम देखेगा। लेकिन पापा ने कहा था —

'तुम अभी पढो। दसवा तक पढना काफी नहीं होता।

इसके बाद प्रभात के कारोबार के बिखर जाने के साथ-साथ, अरुण और उलझा उलझा और बिखरा बिखरा सा रहने लगा।

और तब — बेफ्रिक्री से वह कभी पढ न सका। यह भी नहीं कि उसे फीस न भर पाने की फिक्र हो या कि किताबे न खरीद सकने का गम हो, फिर भी एक बेनाम का डर था, जो उसे ग्रसता जा रहा था। और धीरे धीरे वह खालीपन से भरता गया।

वैसे ठीक तरह से अर्चना आज भी नहीं जानती [redacted] अरुण पर इस सन्दर्भ का असर कब और कैसे हुआ ? और क्यों उसमे पैतृक भीरुता घर करती गयी। लेकिन जब एक दो नौकरिया करने के बाद भी वह नौकरी छोड़कर अलग कोटर मे सिमट सा गया, तो अर्चना की जिन्दगी के पर्दे का एक और रिंग खनखना कर टूट गया। और जिस स्टेज पर अर्चना सघर्ष कर रही थी, वह अचानक नगी हो गयी।

कभी कभार अर्चना सोचती — अब ? — अगर मैं मर जाऊ ?

लेकिन जिन्दगी ऐसी नहीं कि चाहने भर से कोई मर जाये।

आज भी अपने मर जाने की बात सोचती हुई जब वह कोरीडोर म जूती उतारने लगी, तो दिखा, अरुण खडा है, और वह हौले हौले इशारे से कुछ समझा रहा है। उसने अरुण की उठी हुई उगली देखी — यानी 50 पैसे। — अभी देखती हू —।" अर्चना कुछ कट सी गयी और आखों मे आसू भर आये। उसने बटुआ टटोला, पैसे हथेली पर उतर आये। पन्द्रह सिक्के जिनमे से 50 अरुण ने उठा लिये। फिर चौकन्नी आखों से इधर उधर देखना,

कंधे दबाकर चप्पल घिसटता खिसक गया।

वह वहां से हटने का इरादा कर ही रही थी लेकिन आभास हुआ कि उसके पीछे कोई खड़ा है। — और उसी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कुछ कह भी रहा है।

'लगता है, तुमसे भी कुछ ले गया है।" प्रभात की धुंधली सी छाया उसे दिखायी दी — 'इधर दिन मे मेरे से भी मांगे थे पैसे। मेरे पास सिर्फ अठन्नी थी, मैंने कहा — ये ले बेशक जाओ लेकिन इसमे से दस पैसे लौटा देना,'फिर उसने वे भी नहीं लौटाए।

एक धधकती-सी गर्माहट अर्चना के होंठों तक आयी, और उदासी का एक झोंका और उसके मन पर लद गया।

उसे अपने ऊपर ही अचभा हुआ कि ऐसी बातों का कुछ उत्तर उसके पास क्यों नहीं होता। — क्यों सिर्फ सिसकती सी कराहट-सी उफनकर रह जाती है, और फिर सब पहले जैसा शात हो जाता है।

प्रभात दिन भर क्या करता है ? कोई कौतूहल अब मन मे नहीं उठता। सारी जिज्ञासाए जैसे लबी तान कर सो गयी हैं। इतना भी नहीं होता कि जाकर देख, पिछले कमरे मे बैठा वह क्या कर रहा है ? या मजु ही कहा है अब ? —

ऐसी ही जड़वत् वह बैठक मे बैठी थी, जब प्रभात की आवाज सुनायी दे गयी। — "तुम इधर ही अलग से पखा चला के बैठी हो — और सौ का बल्ब जल रहा है। — जो सीखना पढ़ना है, वह उधर भी तो कर सकती हो ! आखिर जो इसान थका हारा बाहर से आया है, उसे कम से कम पखा पानी तो चाहिए ही —"

ओह — तो ये मजु उधर पढ़ रही है ? — लगा जैसे मजु ने किताब से आख उठाकर देखा हो और फिर पूरी बात सुने बिना ही पापा के आगे से हटकर सीधी बरामदे मे चली आयी हो। सोचा होगा थोड़े दिनों की बात ही तो है। स्कूल खुल जाने पर खुद ही घर से छुटकारा मिल जायेगा। अर्चना ने देखा, मजु ने भीगी हुई आखों के आगे किताब खोल ली है, लेकिन पापा के सवालों के पीछे फैली हुई दूरिया ने उस जैसे खोखल की धूमिल चट्टान पर फेक दिया है। लेकिन उसे पता नहीं कि पापा उसे वहा भी पहुचकर अब सवालिया चेहरे से देख रहे हैं।

"मजु, मैंने पखे के तले बैठने से मना तो नहीं किया तुम्हें। यही कहा है कि तुम्हारी अम्मी आ गयी है, इसलिए इधर आ बैठो — लेकिन बजाये समझने की कोशिश करने के तुम गुमसुम इधर आन बैठी हो।"

अर्चना ने बिना मजु की ओर देखे जान लिया — कि मजु मे मूक प्रतिक्रिया जगी है। जैसे अभी चीख उठेगी कि अम्मी के आने का पता चलता तो जभी वह इधर आती, या अपने आप जान जाती, कि अम्मी आ गयी हैं। — 'जभी गुसलखाने से निकलकर अर्चना ने उसे पास खींच लिया — 'क्या है मजु ?

'कुछ भी नहीं' — मजु विलग होकर पलग पर बैठ गयी। मजु की मरी हुई आवाज, बुझी हुई कैरेट जैसी रेगती हुई उठी, और अर्चना के सीने पर थककर डूब गयी।

उसने चाहा कि नाउम्मीदी के सदमे से आहत, निढाल होकर चूर चूर वहीं गिर जाये। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह सिर्फ खालीपन से भरी भरी रसोई मे जा खड़ी हुई। झटके से एक गिलास पानी लेकर होंठों से लगाया और खाली गिलास रख दिया। रसोई का दरवाजा भेड़ते वक्त देखा, प्रभात हाथ मे बर्फ थामे एकटक उसे ही ताक रहा है। और प्रभात की खुली आखों मे शिकायत है कि अर्चना ने बेकार गर्म पानी क्यों पी लिया ?

उसने चाहा — कहे — 'क्या फर्क पड़ता है। लेकिन अनुत्तर ही रसोई से बाहर आ गयी। पलग पर मजु को देखा तो याद हुआ, मजु ने परसों ही रिमार्क कसा था — "यह तरद्दुद आपके लिए ही खास तौर से किया जाता है।" चलो अच्छा हुआ, आज की बर्फ सभी के काम आ जायेगी। इस तरह से मजु 'पक्षपात' होने वाली बात को भूल जायेगी। — लेकिन मजु का 'तर्क' क्या सही है ? और उसके कष्ट को क्या इस घर मे मान्यता दी जाती है ? — अगर ऐसा है तो क्यों ? — और मजु क्या यह सब समझती है ?

मजु किस कक्षा मे है अब ? — शायद ग्यारहवीं मे — हा स्कूल का आखिरी साल है। इसके बाद फर्स्टईयर, — ज्यादा से-ज्यादा बी० ए० फिर शादी-वादी हो जायेगी, और मजु का दृष्टिकोण खुद-ब-खुद बदल जायेगा। — मजु की प्रवृत्ति ऐसी क्यों है ? अजीब लड़की है, पढ़ाई मे जितनी ही होशियार, खाने-पहनने के बारे म उतनी ही बेलिहाज। जाने ससुराल मे कैसे खपेगी ?

खाने की तश्तरिया और शर्बत अर्चना ने मजु की ओर बढ़ाये, लेकिन मजु के सिर हिलाकर इकार करने के बाद, किसी ने उसे नहीं छुआ। प्रभात ने जाकर देखा तो मजु पुस्तक म सिर गड़ाये पढ़ रही थी। और अर्चना अधलेटी अवस्था मे कनपटी को हथेली पर दिये छत के पखे की ओर ताक रही थी। उन्होंने तश्तरी अर्चना की ओर बढ़ा दी — "चलो, तुम तो लो —"

— अकेली वह। — यानी — फिर उसी की सुख-सुविधा को प्राथमिकता जबकि प्रभात —

मजु के रूठने की बात जान गया है ? लेकिन मजु अगर और दिनों की तरह सब खा पीकर चट कर जाती तो प्रभात कहता — 'मजु, बच्चे आखिर अम्मी के लिए भी कुछ रहने दिया करो — ! या कहो कि तुम्हे घर मे कुछ खाने को नहीं मिलता। —"

ऐसे ही एक अवसर पर प्रभात ने अपने बदन की हड्डिया उघाड़कर दिखायी थीं मजु को कि किस प्रकार अब वह एक ढाचा रह गया है। पिछली बीमारी से पहले वह लगातार पद्रह दिन तक एक वक्त भोजन करता रहा है। सिर्फ बजट पूरा करने के लिए ! मजु उसके सामने चुप रही थी। लेकिन प्रभात के जाने के बाद ही अर्चना से कहा था, "देखा अम्मी ! कैसे दिखा रहे थे। — भई, आपको सूखकर काटा होना अच्छा लगता होगा। हम क्यों सूखे ? हम तो दोनों वक्त भरपेट खायेंगे। अगर बजट का ऐसा ही खयाल है, तो आप भी अपने लिए कोई काम खोज लो — दिन भर घर का ही भार ढोना क्या सब कुछ है ?"

— अर्चना ने मजु को टोका था, "ऐसी बात नहीं कहते मजु। — लेकिन मजु पर इसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। अगले दिन ही मजु ने कहा था — "आज हम मूवी देखेगे। —" अर्चना मजु की जिद का प्रतिरोध नहीं कर सकी। क्योंकि मजु इस प्रकार की जिद कभी नहीं करती। लेकिन उस बार वह जिद पर डटी रही। तस्वीर वह आज ही देखेगी। इस जिद पर — प्रभात गुस्से से लाल-पीला हो गया था। 'जानती हो, इस जिद मे क्या है ?" प्रभात ने मजु के कधे पर हाथ धर दिया। मजु का दिल धौकनी की तरह धड़कता रहा होगा, कि पापा अब जरूर कोई तेज और बेढगी बात कहने वाले हैं। हालाकि उन्होंने जो कहा था, वह प्रबल वेग को शात करके कहा था। लेकिन उनका सयत भाव और शब्द — अर्थ सब खोखले बन के रह गये थे। और कह चुकने पर उनके कधों के उभार ढीले पड गये थे। उनके जाने के बाद मजु अर्चना की ओर पलटी थी। — "देखा, कहते हैं, मैं जिद करूगी तो वह भी ताडव करना जानते हैं ? — अगर ऐसी भाषा का प्रयोग हम करे, तो कहेंगे कि खीजकर बोलती है —"।

"— लेकिन तुम्हे भी तो जिद नहीं करनी चाहिए थी। मजु ?"

— "बात सिर्फ जिद की है क्या ?" मजु एक-दूसरे अवसर का किस्सा सुनाने बैठ गयी — "उस दिन सामने वाला गुड्डा और उसकी बहने आ गये, तो मुझे रसोई मे कुछ चाय-पानी का प्रबध करना पड गया। अब पापा रह-रहकर झाक जाते और बुदबुदाते रहे। उन दोनों के जाते ही 'ऐलान' के तौर पर हिदायत दी कि — आज अब काफी बेरहमी से खर्च कर डाला गया है। — शाम का निबटारा भी तुम्हीं करो। मैं कुछ नहीं करने का।

तब मैंने कोई जवाब नहीं दिया। रसोई मे घुसकर आटा और बेसन निकाला, प्याज काटा, और गूथ गाथकर कर मिस्से पराठे बना डाले। साथ मे बेसन और दही वाली कढ़ी भी बना डाली — । बस, देखा और बुदबुदाते रहे कि कमाना पड़ता है, तो पता चलता है। जैसे इनकी कमाई उजाड़ थली हो।

अर्चना ने उसे दोबारा सुभा दिया — 'फिर वैसी बाते — ? ऐसे नहीं कहते, मजु — कुछ समझदारी बरतते हैं।'

लेकिन आज वही मजु जब समझदारी से काम लेकर दो बार खाने को मना कर चुकी, तो प्रभात अर्चना पर उत्तेजित हो उठे। — 'तुम्ह भी अगर नहीं खाना तो बता दो, उठा के रख दिया जाये।

सुनते ही मजु और अर्चना दोनों ही झटके से उठकर बैठ गयीं। फिर खाते वक्त अर्चना ने मजु को पास खीच लिया।

'चल, अब खा ले बच्ची ! नहीं तो पापा को दुःख होगा —"

जैसे मजु कुछ और सोच रही हो, अचानक कह पड़ी — आपको खिलाना ही तो पापा का प्रिय है — अगर कहो कि भाई को भूख लगी होगी, तो कहेंगे — वह अपनी मर्जी का मालिक है। जरूरत होगी, खुद ही खायेगा। इन्हे क्या मालूम नहीं कि इनके डर से भाई किचन की ओर देख तक नहीं सकता। वे तो चोरी छिपे मैं ही कुछ न कुछ भाई को खाने को देती रहती हू। पर भाई खुले दिल से उसे भी खा नहीं सकता कि अगर पापा ने खाते देख लिया, तो सोचेंगे, इसे खाने के सिवा कुछ काम ही नहीं।

— 'ये तुम्हारा अन्याय है। दिन भर तुम्हारे पापा को तुम्हीं लोगों का तो फिक्र रहता है मजु। खुद तो वह खाते तक नहीं। —"

— फिक्र अपना तो मैं खुद ही करती हू अम्मी। जहा तक भाई का सवाल है, उसे सामने देखकर दे भी दे, तो भी इतना कम देंगे, कि मुझे शर्म आ जाती है — क्यों ? भाई को क्या भूख नहीं लगती ? — अगर वह खुद बिना खाये रह सकते हैं, तो क्या सभी रह सकते हैं ? —

अर्चना खाने के दौरान से लेकर शर्बत की आखिरी बूद खत्म कर लेने के दौरान तक रह-रहकर बाहर देखती रही थी। और तब मजु को टहोका देकर कहा — 'जरा देख आ, अगर वह आ गया हो ?"

सावधानी बरतने पर या कि बहुत धीमी आवाज पर भी जैसे प्रभात के कान रहे हों —

पूछा — "क्या ?"

'कुछ नहीं" कहकर अर्चना टाल गयी। फिर लगा जैसे कुछ गलत काम करते-करते प्रभात द्वारा पकड़ी गयी हो। जिससे अपरिचित डर की एक घुटी-घुटी सी गंध अब उसे धीरे धीरे घेर रही हो।

"तुम क्या चाय लोगी ?" प्रभात ने विषय बदल दिया।

"चाय ? ज़रा ठहर जाये, क्यों ?" वह कहना चाहती थी कि अभी ठंडा शर्बत पिया है — लेकिन उसके कुछ कहने से पहले ही प्रभात ने कहा — "मैं तो और रुक नहीं सकता, तुम जानती हो, चाय के बिना मुझे सिर दर्द होने लगता है। चाय पीते वक्त प्रभात ने दबी जबान से जाहिर करने की कोशिश की, कि अर्चना के अभी चाय न पीने की असलियत वह जानता है। कहा — "पहले मैं राह देखता था। आवाज देकर बुला भी लेता था। लेकिन अब मुझसे वे सब चोंचले नहीं होते। तुम उसका स्वागत करो, शायद उससे कुछ इनाम तुम्हे मिले। — इन सब बातों का जवाब अर्चना के पास कभी नहीं रहा। आज भी नहीं था।

"मैं नहीं जानता" — कहते-कहते प्रभात के गले में जैसे कुछ अटक गया — शायद आजकल का यही दस्तूर हो — कि हृष्ट-पुष्ट नौजवानों को सब कुछ तैयार मेज पर मिले। लेकिन अपने पिता के सामने मैं ऐसा नहीं कर सकता था। यानी — ऐसा मौका अगर जिंदगी मे आता, कि मेरे बापू को भोजन की थाली उठाकर मेरे सामने लानी पड़ती तो मैं कट के मर जाता। लेकिन आज?

प्रभात की बातें जैसे वह गले से उतार नहीं पाती। अगर पेट तक ले भी जायेगी, तो पेट की एक-एक अंतड़ी पिंडाने लगेगी। और लगेगा कि वह छटपटाती हुई घर से बाहर निकलकर धरती के शून्य छोर तक आ गयी है। उसके परे सिर्फ दिल की धड़कन है। आज भी — प्रभात की बातें सुनकर उसका सिर चकराने लगा। प्रभात का ये उबाल सिर्फ बेटे की असमर्थता को लेकर है। — या इसमे प्रभात की अपनी असमर्थता भी नत्थी है ? — नहीं — ये तो शायद तीसरी कुढ़न है (जो सिर्फ प्रभात के संग ही होती है, जहां वह निस्संग है) वह चाहता है, अपनी असमर्थता को न देखे। उसकी नजर बेटे की असमर्थता या लटके हुए चेहरे पर भी नहीं। वह बेटे से पैदा होने वाले लाभ पर नजरें गड़ाये है। — इसलिए दुःख पा रहा है। — उस दुःख को वह अर्चना से बांटना चाहता है। अर्चना, शायद सहानुभूति जताये। — लेकिन अर्चना क्या प्रभात के रवैये को संगत मानती है ? — क्या प्रभात की कुढ़न दूर कर सकती है ? —

प्रभात की अटपटी आवाज अब और स्पष्ट सुनायी दी — 'और तिस पर यह कि वह

अपने को आर्टिस्ट समझता है। यह नहीं जानता कि आज अच्छे-अच्छों को आर्ट से कुछ तलब नहीं होता —। लेकिन मा को इसी बेटे पर अब दुलार आ रहा है। ऐसा जब हम करते थे तो इसे लल्लो चप्पो कहा जाता था।"

अर्चना का मन किया कि प्रभात की बात के जवाब मे कहे — 'वक्त-वक्त की बात है। तुम्हारे आगे बेटे का चेहरा शायद नहीं आता। एक बाईस-तेईस साल के नौजवान का चेहरा कैसा होता है, शायद तुम भूल गये हो —। लेकिन मेरे लिए यही बात ज्यादा महत्त्व की है। — मैं वो नहीं हो सकती जो तुम हो —

— लेकिन चाय खत्म हो गयी थी, और प्रभात उठ गया था, और जाते-जाते कह गया था कि इस बीच अगर अर्चना को चाय पीना हो तो चाय केतली मे बची है।

कोई और दिन होता तो अर्चना चाय ठडी होने से पहले ही पी लेती, लेकिन आज शनिवार है। चाय देर से पीने पर भी काम चल सकता है। रात देर से भी नींद आयेगी तो क्या ? — शनिवार को रसोई मे इतनी जल्दी जाने के लिए उसके मन मे कोई उत्साह नहीं था।

हा, पिछले शनि भी लिली के सफेद पत्तों पर उठी तारों के सुनहले सेलेंडर्ज का निरीक्षण कर रही थी। तो मोन्दिरा आयी थी। मोंदिरा उससे दस साल छोटी है, लेकिन उसने आते ही सुझाव दिया था, — इस मुर्दा जिन्दगी से बाहर, कुछ देर के लिए निकला जाये तो अर्चना दीदी आपको कैसा लगेगा ?

उस प्रस्ताव पर सिर्फ उसे आपत्ति थी, इसलिए वह लोधी गार्डन की मटियाली झाडियों तक पहुचते-पहुचते रुक गयी थी।

मजु और अरुण जब आगे चले गये, तो मोंदिरा ने चुप्पी तोडी — "मैं सिर्फ आपके लिए आयी थी, अर्चना दीदी कि आखिर आपने अरुण के लिए क्या सोचा ?

उसने शायद कुछ भी नहीं सोचा था, इसलिए उसके पास कोई जवाब नहीं था।

— "और जीजा जी को कहना तो वैसे ही बेकार है। क्योंकि वह अपनी जगह खीजे-खीजे-से रहते हैं। और उन्हे हम कुछ कह भी नहीं सकते चाहे जैसी भी गाड़ी खींच सके, कुछ देर खींचते ही रहे कभी। कुछ तो किया ? लेकिन अरुण की बात तो समझ मे ही नहीं आती। — हो सकता है, यह खानदानी बीमारी हो। लेकिन आप इसे दूर तो कर सकती हैं। — ? कब तक कोई एक, दो या पाच-दस देता रहेगा। आप उससे साफ क्यों नहीं कहतीं कि वह कुछ करे — ?"

हा — वह क्यों नहीं कहती किसी को ? शायद उसमे साहस नहीं —। वह देखकर कार

जाती है कि किस तरह वह सिर डाले सब से पड़ा रहता है।

— ' और यह तो बडी विस्फोटक स्थिति है अर्चना दीदी — प्रभात जीजा इसे कैसे च रहे हैं ? — '

'वे दोनों ही टाल रहे हैं मोंदिरा। —" वह धीरे धीरे बताती रही — "क्योंकि विस्फ ग्रहण करन वाली एक चीज उन दोनों मे मौजूद है। वे तो सिर्फ विस्फोट बांटने के आले भर हैं —।

' — तब उस एक को ही बोझ उठाये रहने दीजिए। लगता है आपका बोझ कम किये जान की गुजायश नहीं। —"

— फिर वे लोग धीरे धीरे लौट आये थे। मोंदिरा के बहुत समझाने पर भी मोंदिरा की बात उसके दिमाग मे उतरी नहीं थी। वह सोच रही थी — पहले प्रभात के चेहरे की उभरी हड्डिया देखकर मन गलता था।

— और अब वही हड्डियों का ढ़ेर बेटे की छाती पर देखने के बाद बाप की उभरी हड्डिया स्वाभाविक लगती हैं। — प्रभात के स्वास्थ्य मे रचा कीड़ा भी मेरी छाती कुतरता था, और अरुण की हड्डिया भी महीन सुइयों की तरह मेरा ही सीना छेदती हैं — अब मेरे से सीधा कतई नहीं देखा जाता। सब पीठ पीछे होता रहता है।

रसोई से बाहर — दालान का फर्श धुला धुलाया था। वह वहीं देर हो गयी। — थोडी देर मे प्रभात आयेगा। अर्चना को औंधा पड़ा देखकर रसोई मे घुस जायेगा। फिर उठेगी बरतन घिसे जाने की आवाज। घर्र घर्र र्, वह उसके सीने को रादती रहेगी। मरी मछली जैसा उसका वक्ष लताड सहन कर लेगा, लेकिन ऊपरी समवेन्ना जताने नहीं उठेगा। कभी उसके सीने की मछली अधमरी होती है, और तडफडाती हुई रसोई म घुस जाती है उस उस िन प्रभात गुस्से मे बरतन पटककर विम सने हाथों से बाहर आ जाता है। किसी किसी िन वह शात, स्थिर आखों से उसे मात्र देखता भर है, और विम का डिब्बा उसके हाथ से ले लेता है। — 'तुम छोड दो, — " उस दिन वह छीना झपटी नहीं करती। वह अपने को धोखा दे लेती है — "दो ही तो बरतन हैं। दूध का और केतली —

— "लेकिन मिलकर भी तो कर सकते हैं ? — वह सिर्फ सोचती है, और विदेश की बहुत-सी सेल्फ हैल्प की बात ताश के पत्तों जैसी उसके सामने बिखर जाती हैं। लेकिन सारी विदेशी बाते क्या अपने ऊपर थटाई जा सकती हैं ? — तो फिर यही क्या ? क्या वह तीस रुपये महीने की नौकरानी ही रख लेने का प्रस्ताव प्रभात के सामने नहीं रख

सकती ?

लेकिन प्रभात से कैसे कहे ? वह मजु के स्कूल की सारी स्लिपे उनके आगे बिखेर देगा। और बचे हुए रुपये भी —। हमेशा यही होता है। और वह रुपये उसे फिर से प्रभात को लौटाने पड़ते हैं। — फिर ? किससे कहे वह? शायद आज प्रार्थना करे। आतुर होने पर अक्सर वह भरये मन से प्रार्थना करती है। फिर भरी हुई आखों को पोंछकर जब बगीचे की ओर आती है, वहा प्रभात आखे बन्द किये सिगरेट पीता मिलता है। वह दबे पाव लौटकर रसोई का काम खत्म करने मे लग जाती है। ऐसे मे वह किचन टेबल धोयेगी, चकला बेलन साफ करेगी, दही जमायेगी और सुबह के लिए कोई दाल भिगो देगी, ताकि प्रभात को सब्जी की तलाश मे सुबह-सुबह न दौड़ना पड़े।

— हा, पहले रसोई का कचरा फेक ले। रसोई धोकर एक साथ बाहर निकलेगी।

बाहर निकलने पर, वह आहट बचाती, चारपाई डालने बढ़ेगी, तभी प्रभात चौंक जायेगा।

— तुम्हारी बस के पैसे अभी ही निकाल दू। —

वह चुपचाप बिस्तर बिछाती रहेगी। तो वह पूछेगा —

— 'हा, सुबह क्या ले जाओगी — ?

— कुछ भी — वह बेमन से कहेगी।

— 'रोज एक ही जवाब। ये कुछ भी कह देने से अन्दाजा नहीं लगा सकता — सीधे कहो, भिंडी, बैंगन या लौकी —

— सभी ठीक हैं — या सिर्फ फल — डबल रोटी या ऐसा ही कुछ।" कहती हुई वह अपनी डायरी खोल लेगी।

— 'डबल रोटी तुम क्या समझती हो, सस्ती रहती है ?"

सस्ते-महगे के चक्कर से बचने के लिए वह फिर अपनी डायरी मे उलझ जायेगी।

— 'बाजार बन्द हो जायेगा। पहले मुझे तो फारिग करो — ?"

वह प्रभात की बात का अनुमोदन करेगी — "हा, तुम्हे सुबह दूध के लिए उठना होता है। तुम सो जाओ।"

— प्रभात सो जाता है, अरुण और मजु भी। तब [illegible]

उसे पहले ही उठना पड़ा।

— बाहर बूटों की आवाज पर जैसे प्रभात के कान [illegible]

[illegible] [illegible]न।

इनका। — अब इनके लिए नये सिरे से चूल्हा जलेगा। बरतन घिसे जायेंगे —

वह यह देखने के लिए उतावली मे बरामदे की ओर बढी कि कहीं अरुण ने प्रभात की उक्ति सुन तो नहीं ली? — लेकिन सुन भी ली हो, तो क्या फरक पडता है! अब तो सबकी आख का पानी मर गया है। वह रसोई मे गयी, और अरुण के लिए सब्जी, दाल और चपाती ले आयी —

देखकर अरुण ने दही अलग कर दिया।

— 'दही मुझे सूट नहीं करता।

— "यह गलत है, दूध दही, अडा वगैरह तुम्हे सूट करते हैं। अगर तुम ये सब लगातार खाओ, तो एकदम फरक आदमी बन जाओ —।' लेकिन यह उत्साह वह देर तक न बनाये रख सकी। उसे यह सोचकर धक्का सा लगा कि दूध की बोतले गिनी गिनाई आती हैं जिसम से सिर्फ मजु, प्रभात और अर्चना ही पी सकते हैं। बाकी का दूध चाय कॉफी या दही के लिए भी कम पड जाता है।

— लेकिन क्या वह दूध छोड नहीं सकती? — उसमे इस सवाल ने सिर उठाया, लेकिन लगा कि नहीं, दूध वह कम भले ही कर दे, छोड देने पर काम करना मुश्किल हो जायेगा — इस पर एक सवाल और ऊपर उठ आया। — काम न कर पाने की वजह क्या सिर्फ दूध छोड देना भर ही है? — इस तर्क को वह पूरी ईमानदारी से स्वीकार करना चाहती है, पर कर नही पाती, — क्योकि ये वजहे कभी एक नहीं होतीं, न अकेली होती हैं। एक वजह के साथ ही अनगिनत दूसरी वजहे होती हैं। जैसे पौध पर छाई बेल। जो एक बार पौध पर छाती है, तो पौध का मूल रूप ही नष्ट कर डालती है।

— शायद ऐसी ही किसी आवेष्टित स्थिति मे है खुद अर्चना — क्षार क्षार — और पस्त — मुह फाडकर कुछ नहीं कह सकती —। किसी का रहस्य नहीं जानती। — जैसे उसका रहस्य है, जो ये नहीं जानते, कोई नहीं जानता। अर्चना ने आखे मूदकर सोचा। और अगर वह अब इसी क्षण मर जाय —। — और तभी उसे आभास हुआ अरुण के उठने का —। वह चारपाई से उठ गयी। — अरे, खरबूजा देना मैं भूल गयी।" खरबूजे को पूरा छीलकर उसने सबमे बाट दिया। इस दौरान उसने निश्चित किया कि वह अरुण से कहेगी, वह जिन्दगी को गभीरता से ले। प्रभात की तरह हथियार न डाल दे। — और फिर प्रभात को तो दुनिया ने धोखे के चक्कर म कसकर पस्त कर डाला था — वरना क्या था, वह धीरे धीरे चलता रहता —। जबकि तुम अभी जवान हो। इंटैलीजेंट हो और नये ऐरा मे रहते हो — तुम्हे नये दौर के अनुकूल काम करना चाहिए। —

— तभी उसे लगा कि कोई पास खड़ा कानों मे फुसफुसा रहा है — आज वह सामने वाला के साथ था। मैंने उसे उनके साथ आते देखा था। — है तो होशियार — जरूर इसने उन्हे किसी न किसी चक्करबाजी म डाल रखा है।

सुनते ही उसका सारा ताना बाना छिन्न भिन्न हो गया। अब क्या कुछ कहा जा सकेगा उसस ?

लेकिन मॉन्‍टि्रा उसकी ऐसी बातों को बहाना कहेगी। उसके तर्क को अवैज्ञानिक बताकर मान्‍टि्रा बाइबिल के रबल और केन का उदाहरण देगी। भाई द्वारा भाई को, और पुत्र द्वारा पिता को मार डालने का उदाहरण सामने रखेगी। — और अविवाहित मा का — कि कैसे शर्म से बचने के लिए अपने बच्चे का गला वह घोंट देती थी — लेकिन विवाहित मा के बारे म मॉन्‍टि्रा कुछ नहीं कहेगी। और उसकी आखों के सामने अरुण का चेहरा कितने कोणा से उभरता रहेगा — । जिस चेहरे पर डर और वहम ने राख भी पूड दी है जिसके बाला पर मिट्टी की गहरी पर्ते अब सफेद होने जा रही हैं, और जिसकी आखो के गिर्द जैसे किसी ने गड्ढे खोद डाले है जिनमे हड्डियों के पिंजर उग आये हैं। वह हार गयी है। अपन को और ज्यादा बड़ा झासा देन मे असफल है। उसे पुत्र मानकर क्षुब्ध है। नही, उसकी कोई नहीं होती वह। किसी की कोई नहीं होती। किसी पर दया नहीं कर सकती। अपन पर कितनी दया वह और करे ?

पहली स्थिति अंतिम स्थिति

'दम्मो ! दम्मो !' — सहसा आवाज गले मे भिच गयी। घबड़ाकर आखे खोल दी, तो पाया, य
उसी का कमरा है। सब कुछ ज्यों-का-त्यों है । 'हे प्रभु !' यही दोहराता रहा,
घबड़ाहट पर गयी नहीं, और दाये हाथ से चादर हटाकर दूर फेंक दी। बिजली के खभे
रोशनी मे भीतर का सब हल्का हल्का दिखायी दे जाता रहा। पास जाकर घड़ी देखी, अं
दिल को सुबह होने की तसल्ली दी। आखे मूदकर शात और एकाग्र होने का प्रयास किय
मन फिर भटकने लगा तो कमरे में टहलते हुए शैल्फ के सामने जा खड़ा हुआ। शैल्फ
पुरानी फाइलें थीं। कारोबारी कागज, अब इनसे उसे क्या सरोकार ? सिर्फ पुरा
कारगुजारी की यादे। जीने का बहाना नहीं सिर्फ धोखा ! नीम अधेरे मे दिखायी दे गयी
शैल्फ के ऊपर धरी पत्नी दम्मो की तस्वीर। सिलवर रगे फ्रेम मे तस्वीर सौम्य अं
शात-सी। सदा अपनी मौन भाषा मे कुछ-न-कुछ बताती हुई। पर अब यह तस्वीर
उस अनुबध वाली फाइल जैसी ही नहीं रह गयी है। विवाह सरचना की याद दिलाती-सी
पर जिन यादों से उसने इन दिनों दूर रहना चाहा। दूर रहना ही नहीं चाहा, छूटना
चाहा। पर क्या करे, छूट सकता ही नहीं — सोचा तो फिर से घबड़ा गया। लगा कि इ
अकेले कमरे मे नये सिरे से वह दमयती को आकारित करने लगा है। तब चाहा
सीढ़िया उतर कर सड़क पर चला जाये — गहरी साय-साय म कुछ ढूढने। क्षणाश
ही तब अपनी आखों से खुद को सड़क पर भागता देख लिया उसने। पिछले पाच वर्षों मे
कितनी बार सदेह भागा था, इन सड़कों पर। इससे आगे सोच पर ताला डालकर देहरी
बाहर आया कि पानी पी ले, पर गलियारे म सहसा ही उसके पैर रुक गये, क्योंकि बैठ
मे तेज रोशनी बाहर तक आ रही थी। और वह सोचने लगा था कि रोशनी कैसे उ
गयी, जबकि बहू भी मायके गयी हुई है। शायद कि लड़का ही रात बत्ती खुली छोड़
सो गया हो ? — देखने के लिए वह पर्दे से झाका तो लड़के को कागजों के ढेर मे खोया पाया
बोला — "अच्छा है, अपने को खपाये रखो काम मे "

पता नहीं किस धुन मे कह गया था, और किसी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया जाने-सुने बिना ही रसोई मे पानी पीने चला गया। बाहर आया तो दरवाजे की सिटकनी खोलकर स्टेयरकेस मे खड़ा हो गया। अनायास कहा — "भगवान, माफ करना — " फिर पता नहीं क्या सोचकर वहीं प्रणाम की मुद्रा मे लेट गया। उठा — तो सहसा लगा कि उसके सारे क्रियाकलाप दमयती जैसे हो गये हैं। उसने कदम वापस उठाया कि चाय बनायेगा, — पर नहीं, चाय तक तो बहू आ ही जायेगी। अब वह ये झझटे हाथ मे नहीं लेता। — पहले था कि जा-बजा जरूरत पडने पर ऐसा कर लेता था। — कि परदेस मे टिकना कम ही मिलता था।

पर पूछे कोई, वह घूमता ही क्यों था ? शायद कि शुरू से ही यही देखा जाना था उसने। एक ढर्रा था, सो वही चल निकला। कागज-पत्तर ! एजेंट, खाते — ! और प्रात-प्रात मे एजेंटों की तलाश। अनुबध और अग्रिम राशि के चैक। —

लड़के का कामनों मे गर्क होना उसमे फिर से ताजा हो आया। — पर कितना कष्टदायक है इसमे गहराई तक उलझना ! अधेरी गुफा मे मकड़े की मानिंद लटकने जैसा।

बहुत पहले ही इसमे फसा गया था वह। बधे हुए चक्कर को तोड़कर, भीतरी अमूर्त सपना साकार करने की इच्छा से। हालाकि दूर दूर जाकर जड़ जमाने के फैलाने के खिलाफ थी दम्मो ! आवाजाही के चक्कर से बेजार वह कहती कि — "पैर जमाने के लिए नहीं दौड़ते हो तुम ? उसमे तुम्हे खुशी हासिल होती है, उसी मे व्यर्थ गवाते हो वक्त और पैसा भी।

वह दम्मो को मूर्ख बताता — पैसे का लोभी।

— 'तुम चाहे जो कहो, है यही बात। —"

दम्मो के कहने का अर्थ होता कि वह पैसे को पैसा नहीं समझता। उस बार दम्मो की बात झूठी साबित करने के लिए ही उसने दम्मो को साथ ले लिया। दोनों बाते हो जायेगी। बड़ा और मझला दोनों मैट्रिक का प्राइवेट इम्तहान भी दे लेंगे, और बचत भी हो जायेगी यानि कम-खर्च बालानशीन।

जब इम्तहान निपट गये, और वह वहा वैसा ही पड़ा-पड़ा वक्त काटने लगा, तो दम्मो सशय मे पड़ गयी। इधर उधर करते बोली — "दिन भर ड्राफ्ट और नक्शे ही तैयार करते रहोगे, या आगे की भी सोचोगे ?"

दम्मो ने क्या यही नहीं कहा कि बेकार घर म पडे रहते हो ? — वह इन बातो से चिढ्ता और फट भी पड्ता — "ठीक — मेरी गुरु — मैं ऊब गया हू, — खु्‍ से तुम से काम-काज से ।"

दमयती कान खडे कर लेती — 'खीजने को छोड कुछ आता भी है तुम्हे ?' — फिर थोड़ा दब जाते कहती — 'कमाना तुम्हें रास नहीं आता ?

वह कुछ चुभती बात कहने को होता, पर खुद पर काबू पा लेते कहता — 'मुझे तो लगता है — सुख ही तुम्हे रास नहीं आता ?

वह कहना चाहती, सुख किसे रास नहीं आता ? पर यह न कहकर कहती — 'मुझे क्या है, पडे रहो जैसे पडे हो, किसी के कंधे थोड़ा चलोगे ।"

तब वह औरत की बुद्धि पर तरस खाते माथे पर लकीर खींच लेता । उस अनपढ बताता, काम बिगाडने वाली भी । और आगे के लिए तबीह कर देता कि वह उसके कामो मे टाग न अड़ाया करे । — इसके बाद, हा — वह कोई राह ढूढ ही रहा था कि उसे पार्टनर ने ‍िल्ली बुला भेजा, और बात बन-सी गयी । अब आगे ? हा

जब वह ‍िल्ली से आगे जाने लगा, तो दम्मो को साथ ले जाना बेमानी सा लगा । बच्चों की तो छुट्टिया हैं ई । फिलहाल दम्मो को मायके म ही पडे रहने दिया जाये । मन म यह सोच लेने पर उसने दम्मो के विचार दम्मो पर ही लादते हुए, अपना निर्णय कह सुनाया, और कहा — 'इसलिए साथ नहीं ले जा रहा हू — कि मौका है, तुम आजादी से चाहो — जैसे चाहो रहो — ।' जिसके अर्थ ये थ, कि तुम भी जोर लगा देखो, पैसा कमाने की दिशा मे । तुम्हे भी तो पता चले बात करना आसान है, या पैसा कमाना ? दम्मो के मुह स बोल नहीं फूटा । मायके म है वह । कुछ भाप बाहर निकली — तो, भाई भाभिया जान जायेगी । जानकर सब संदिग्ध आखों से देखेगे । मा पर क्या बीतेगी ? पिता अलग सत्रस्त होंगे । सुनने पर बडे मझले पर भी बुरा असर पड्गा ही । जबकि दोनों के दाखिले की आगत की बात वह उठाना भी चाहती थी — पर कुछ सोचकर इतना ही कहा — अलग जगह लेनी होगी ।

उसने तत्काल पूछा — "किराया कौन देगा ?' — बात जैसे सिर्फ किराये की ही हो ? पर दमयती चुप ।

तब स्तभित रह गया था वह कि दमयती ने झट निर्णय भी ले लिया ? — कि उसने कहा और दमयती ने मान लिया ? — बुद्धू औरत ! — घरों म क्या क्या घट जाता है ? तब कोई भीतर तक ले सता है ? ऐसा नहीं ले सकती थी — कि — पति यानि वह चाहे कितना

मी चौपट हो, — पर बेमुरव्वत नहीं हो सकता ?

बाहर थोड़ी उजास फूटी है। घोंसले मे पक्षी रहस्यमय ढग से फुसफुसाये हैं। ये पख फटफटाकर सामने आ जाये, तो उनके क्रियाकलापों के अर्थ जान लेगा वह। पक्षी नहीं दिखे, तो वहीं एक सीढी ऊपर चढ क नीचे झाका। नीचे तमाम हरा-भरा है। पेड़ो की लहराती लबी शाखों के पार कोलतार की सड़क, और फिर छ सात फीट ऊची दीवार। दीवार के पार छोटी-सी बस्ती है। कम ऊचाई वाली इकतल्ला कोठरिया हैं, जिनके बीच एक दोतल्ला चौबारानुमा मकान। यहा से मकान की पीठ दिख रही है। दो रगो की पुताई है — उस पर। बाये हिस्से पर नीली और दाहिने पर गाची रग पुताई। पहले ये घर जरूर सयुक्त रहा होगा। विभक्त होने पर पुताई क रग भी अलग-अलग हो गये होंगे। मकान स बहुत ही ऊचे पर छितराया हुआ है सघन-सा नीम। निंबौलियों के बोझ से मकान पर झुक-झुक जाता है। — बाजू के दालान म अचानक एक अकेली चारपाई म कोई उठ बैठा है।

देखकर चान्दनी मे नहाये आगन मे बिछी दो चारपाइयो की कल्पना मन म उठ आयी है।

— नयी नयी ब्याही दम्मो। और वह। — फिर जब ? हा, दम्मो ने जब अलग मकान ले लिया, तो पूछा — भुगतान कैसे करोगी ? मतलब किराये वगैरह का ?"

उसन बात सहज हसी म टालते पहले तो 'हातिमताई' का नाम लिया, फिर फेरी वाले की याद दिलायी जो 'हनुमान चालीसा बेचता हू —। नल-दमयती और शीरीं फर-हाद बेचता हू।' कहता था न ?

— कैसी सीधी लड़की जानता था इसे ? पर जरा भी सचबोली नहीं निकली ये ? बाद मे पता भी चल गया कि वह झोला लटकाये घर घर कपड़ बेचती फिरती है।

दमयती से एक बार भिड़त-सी हो गयी। वैसे ऐसी भिड़त सहवन नहीं होतीं। उसे सिर्फ आकस्मिक मान लेता है व्यक्ति। खुद को धोखा देने के लिए। वह अपने को बचाता। अनदेखा-सा व्यवहार कर रहा था। पर दमयती ही आगे बढ आयी कि आओ — उस वक्त काम का बहाना बनाकर तेजी स एक ओर चल दिया वह। पर पीछे-पीछे दमयती के शब्द भागे आये।

— 'देखो, अब जो देख लिया है, तो आना न भूलना।

देखा पहले ही था पर गया बुलावे पर। वहा ठहरा था तो अच्छा लगा था पर ऐसा

सकोच, जैसे पराये के यहा जाकर ठहरने पर लगे। हालाकि जितने दिन वह वहा रहा, दम्मो काम का हर्ज करके उसके पास ही बनी रही। और अहसास भी दिलाती रही, जैसे उसके पहले वाले दिन लौट आये हों। पहले जैसी उसकी चारपाई दमयती की चारपाई की बगल म (दालान के पार — तग-सी गली मे आड़ी-टेढ़ी बिछाये — तीनों बच्चे थे। पर ये अन्याय है। वह आ गया।

— वे दिन भी यहा खड़े-खड़े ही उसमे साकार हो रहे हैं। दम्मो के न रहने पर अब दम्मो ही के नये घर म हर दिन उसका कोई-न-कोई रूप सामने आता ही है। डस्टपीरा का झाला लिय दम्मो। नल-दमयती बेचती दम्मो। अस्पताल क आगन की सफाई की देखभाल करती। मरीजों की भोजन ट्राली सजवाती। गिनती, हिसाब — सामान स्टोर मे रखवाती — प्लाट पर खड़ी नीचे खुदवाती, पौध सवारती — अतत कुचले हुए शरीर वाली — लावारिस लाश जैसी पड़ी दम्मो।

दहल जाता है तब। बेचैनी से भरा इस्तरह की छटपटाहट महसूस करते, मन, बुद्धि और विचारों की धुनाई करने लगता है। चैन किंतु हरिद्वार — मथुरा — वृन्दावन पहुचने पर भी हाथ नहीं आता। अपनी मूर्खता की बाते बतियाता फिरता है। हैरत मे भरकर लोग देखते हैं, — फिर सिर फिरा मानकर किनारा कर लेते हैं। — 'क्यों सिर खाते हो — भाई? राह देखो अपनी।—"

कोई सच्चा-झूठा हौसला बधाने कहता है — 'न तो एक साथ कोई आता ही ह, न ही जायेगा साथ।" यह बात भी उसके लिए नयी ही थी। पहले सुनी ही नहीं थी। सोचा — कि साथ न आने वाली बात ता समझ में आती है — पर साथ जाने वाली बात तो मुमकिन हो सकती है? दम्मो की धधकती चिता उसके सामने आ जाती है। चाहने पर वह कूद सकता था। चाहता भी था, पर कैसे लोगों ने उसे घेर रखा था? लगभग खू" पर लटका लिया था उसे। अगर वह भागता तो एक तमाशा खड़ा हो जाता। मरने कौन देता? बस, झुलस जाता।

वह झुलसन — कभी गयी ही नहीं।

आख फिर नीचे गयी। पौधे गिनने शुरू कर दिये। दोनों कोनों मे एक-एक चादनी का पेड़। बीच मे च पा। थोड़ी दूर मोतिया — फिर नीबू। — चारों ओर है कन्नेर। कुल नौ पौधे हैं। फिर, तार के साथ पिहरवा है। सामने जाली को छूता एक करम" —।

छाती के सहारे — ईंटे। — ईंट पर ईंट। खुदाई वाले गड्ढे से ढोकर लाती वह। वही ईंटे

फिर एक पर एक आड़ी चुनकर क्यारियों पर बाघ खींच देती। नालिया पहले खोद रखी होतीं — और तैयार धरती मे बीज डालकर मिट्टी ठीक से जमाती। जब पानी दे रही होती तब किसी से बात न करती। किसी की बात का जवाब भी नहीं देती। बाद में बताती — "पूसा इस्टीच्यूट से मगवाये थे बीज। —" बाद मे पानी देना सीखकर आयी है कि ठीक से पानी न देने से पौध बिगड़ जाती है।

— 'पानी ठीक से दो। पौध कभी बिगड़ेगी नहीं ?" — पर कहीं से आकर सुअर और गाये पौध सलाड जाते हैं। एक बार केना! लाल-लाल मखमली गुच्छ के गुच्छ केना चबाती गाय को देख लिया उसने। गाय को मार ही नहीं सकती वह, पर दया भी कैसे करे दम्मो। गाय को भले ही दूब से भी मुलायम रगदार फूल-तुष्टि देते हों ? पर इससे कोई उदरपूर्ति होती है ? पर गाय भी कैसे जाने कि अन्याय कर रही है ? हलक से पार ले जाने का लोभ जो है उसे।

बेचारी गाय! — पर गाय से ज्यादा बेचारी तब दम्मो को बनना पड़ता। बाड़-काटे — और तारों पर तारे। बाड़ों पर बाड़े। पेड़ काट-काटकर बिछाई जाती ऊची शाखे! बेलों — और फूलों का आनद सुख खुद कब लेगी दम्मो ? — और कभी ये बरसात चौमासा बन गयी तो ? दम्मो की जान सासत मे है।

ऊपर बालकनी पर हाथ और कुहनिया टिकाये देखता रहता है वह। कितना ढीठ हौसला है इसका ? ये थकती नहीं ? आते-जाते लोग देखते हैं, इसे इसका भी लिहाज नहीं ? बच्चे-बूढ़े कभी रुककर — खड़े भी हो जाते हैं, देखने। वह खुद तमाशाइयों जैसा — आश्चर्य और दया बरसा रहा है दम्मो पर। दम्मो देखकर भी नहीं बुलाती। वह भी मन्द को नहीं जाता। उलटा बीच मे उकताई-सी आवाज मे कुछ कह देता है — कोई अधूरी बात, सुझाव।

वहीं से कहती है, वह भी — "तुम से क्या कहना ? — पनपना पहुचाना है — आकर पहुचाओ।"

वह अपना रहा सहा मशविरा भी मिट्टी कर देता है। — 'इस दम्मो मे इतजार का माद्दा हो तब न ? माली बुलवा दे सकता है वह, अगर दम्मो चाहे ? — पर बाट जोहने की ताव शुरू से ही नहीं थी उसमे। सोचती है, दोनों तरह से उसे ही हलकान होना है, फिर काम को कल पर टाले क्यों ?

टालती कुछ भी नहीं वह। जूते की पट्टी निकल गयी है तो, परदे का रिंग हो, या अलगनी की कील। उसी समय ध्यान मे आया है — तो कील ठोकनी ही चाहिए। जूता

गाठना ही चाहिए। — एक बार इसी तरह बिजली होल्डर था। ठीक कर रही थी फिर बल्ब से टेस्ट किया होल्डर, बिजली ने करारा झटका दे दिया। नीचे बिस्तर न होता तो ढेर हो जाती। अब, सिर्फ हथेली झुलस गयी।

ऐसे मौकों पर वह निर्लिप्त-सा एक आध रिमार्क कस उसे शर्मिंदगी मे डाल देता रहा है। वह कहती — "आलतू-फालतू हू न, पढी-लिखी होती, सराहना ही पाती ?"

सराहना पाने को कैसा शौक और करने का जज्बा कि करती चले, करती चले। पर आश्चर्य कि जितने दिन दम्मो के यहा रहा, काम-कमाई उसने स्थगित कर दी थी। पर एक जगह विश्रामचिह्न बना रहे, यह भी उसे सह्य नहीं था। उन्हीं दिनों उसने प्रौढ सस्था की शुरुआत की। सस्था क्योंकि पास थी, अत मजाक-मजाक मे ही यह उसके लिए पाठशाला बन गयी। पास ही एक मदिर भी था। प्राय ही वह पाठशाला से मदिर चली जाती।

अगली बार जाने पर उसे नियमित छात्रा बने पाया। कहने लगी-"दो-एक महीने मे परीक्षाए होंगी अब —"

—"और मन्दिर ?"

बोली — "वक्त मिलता है तो जाती हू।"

अभी हाल मे गया था, तो घर पर नहीं थी। बडे से पूछने पर पता चला मदिर मे गोरखपुर वाले स्वामी जी आये हैं। घडी मे पौने नौ थे। पूछा — "पौने नौ भाषण होगा ?"

मझले ने बताया — "वक्त नहीं पता, पर मगल का सकीर्तन रात नौ से साढे दस तक चलता है। फिर आरती "

मदिर की ओर चल पड़ा तो सोचा, 'गाने का शौक पूरा नहीं हुआ तो सकीर्तन की लौ लग गयी है। — औरते भी अजीब होती हैं — एक जगह टिक नहीं सकतीं।'

दम्मो के स्यालों से मुक्त होना चाहा, तो रास्ते की ऊचाई पर आखे दौडायीं। रास्ता हरियाली से भरा है। बायीं ओर लोकल रेलवे स्टेशन है। बाहर की रगदार सिरियों से स्टेशन का प्लेटफार्म पटरी — पेड-पौधे दिखायी दे जाते हैं। जहा से सीढिया स्टेशन के लिए उठती हैं, ठीक वहीं से घूम जाओ तो सामने वाली सडक पर मदिर दिख जाता है।

एकाध बार पहले देखा है, मदिर भव्य है। प्रागण और मूर्तिया भी भव्य। पर मदिर क ठीक सामन — जो रास्ता कर्बला को जाता है। वहा खडे होकर लोग मूतते हैं। मूतने की बडी-बडी धारिया नीचे तक फैली हैं। वहीं मदिर है। भीतर मूर्तिया हैं। और स्वामी जी।

पता नहीं क्यों स्वामि जिओ को लेकर उसकी कोई भी राय नहीं बनती ?

दम्मो — दूर से दिख गयी, तो जूते उतारकर कोठरी तक चला गया। ओट मे खड़ा होने पर सुनायी दे गया— 'स्वामी जी, एक दीन-पापिष्ठ पर कैसे तपोमय-ज्योति अंकित होगी ?'

— 'बस, सहज-सहज — बढ़ेजाओ — देखो,दीनों को हृदय मे रखता है वह। — स्वामी जी मा और बच्चे का उदाहरण देकर उसे समझा रहे हैं। — 'बच्चा बार बार अपने को मलमूत्र से गंदा कर देता है, पर मा हर बार स्नेह से उसे साफ कर देती है। — कहा नहीं कि — 'मूत पलीत कपड होये, साबन मल-मल लइये धोय।' यही है ममता — यही दयालुता —

दम्मो पलटी, तो देखकर स्तंभित रह गयी। 'तुम ?' उसने नहीं बताया कबसे खड़ा है वह। फिर साथ-साथ चलने पर लगता रहा, जैसे लग्न मंडप मे चल रहा हो। ऐसा ही हुआ था — लग्न के बाद घर पहुचने पर। मा ने रस्मों के निर्वाह मे घटों खड़ा रखा था। बाद मे जब लोग इधर उधर हुए तो एक मुह-बोली बहन ने — दम्मो का घूघट उलट दिया। उतावली मे कहा — 'जल्दी से देख ले — बहू।"

वह दम्मो की बजाये बहन को देखने लगा। माने — "इस जल्दी का सबब ?" — तो बहन बोली — 'कौन जाने, दुल्हिन गौने से कब लौटे ?

वही तो हो रहा है, कि नहीं जानता दम्मो कब लौटे ? और उस लग्न के दिन दम्मो को देख लिया था। वह भी कनखियों से उसे ही देख रही थी। और खुश थी। पर वह ? क्यों, खुश नहीं था ? हा, दम्मो छोटी थी। छोटी-छोटी आखे — घनी पलकें, सीधी-सी नाक, गोल-गोल चेहरा। हा, ठुड्डी पर गड्ढा था। औसत लड़की। इससे कभी बात हो सकेगी ?

बात दम्मो से कम ही हुई। गौने के बाद भी। मा जल्दी चली गयी थीं, अब उसके लिए दम्मो कम और बाबू जी ज्यादा थे। दंपति वाला लाड़-दुलार — पिता की भक्ति मे डूब गया था।

तब दम्मो ने गुप-चुप एक राह निकाल ली। अकेले मे उदास होते ही — कार्यालय के प्रवेश द्वार के निकट खड़े होकर अलार्म घड़ी का बटन दबा देती। घड़ी टनटनाती, तो वह प्रागन की ओर मुड़ कर लेता। बाद मे देर रात गये घूमने भी जाना पड़ता। दम्मो अपनी बाहे उसकी कुहनी मे धर देतीं। सतर्क हो जाता वह — "कोई देख लेगा ?" पर दम्मो को यह तमाशा-सा लगता।

पूछती — 'कोई पहचान का इलाका है ?"

कहता — 'हां', तब वे बेपहचान इलाके मे घूमते। बेपहचान इलाके की कोठिया दम्मा को भा जातीं। वह ध्यान से एक-एक कोठी को देखती — 'इनमे से कोई एक कमरा किराये पर नहीं देगा हमे ? —

—'घर हमारे है नहीं ? पर वह हवेली नहीं — कोठी चाहती थी। दिन मे वह जाकर कोठी मे कोई कमरा देख भी आती। कहती—'रसोई बढिया थी। साफ-सुथरी छोटी।

वैसे घर किराये पर लेने के लिए वह आजिज निहोरे लेती। यही हाल थियटर बायस्कोप को लेकर होता, पर सिनेमा देखना कभी कभार ही होता। वह भी आधा ही देखकर उठना पड़ता, क्योंकि बाबू जी के भोजन का समय ही यही होता, और ये कि वह और बाबू जी एक थाली मे ही खाते थे। मा के बाद मे इतना ही फर्क पड़ा कि जो आसन पहले मा बिछाती थी, अब नौकरों की सहायता से दम्मो बिछाती है। बाद मे अकेली पर ही सारी जिम्मेदारी आ गयी तो मन मे दबी ललकें दबी ही रह गयी। जो नहीं दबा, वह था प्यार। जिम्मेदारी। या पति की नस नस को जानना पहचानना।

कभी उसे जताकर कहती — 'कैसे काठ दिल के हो ?

वह उसकी ओर देखता तो कहती — 'मेरे मन की नहीं समझते, मत समझो, पर छोटों की — छोटी छोटी चाहतों जरूरतो पर तो ध्यान दो ही। उन्हे समझो भी ?

—"क्यों कहती हो ? — समझने लायक नहीं रहा, इसलिए ?

कहती — 'मैं लायक समझकर ही कहती हू — मालूम, अपने पति के लिए लायक सुनना कितना सुख देता है!

—'पर तुम्हे पता ? — वह उसे बताना चाहता था, उसके बाबू (दम्मो के) ने (ससुर) उसे घर बुलाकर क्या कहा।

पूछा — 'क्या कहा ?

बताया — 'नालायक बताते हुए कहा कि उसने नौकरी — याने तुमने नौकरी लेने का सोच लिया है।

मैं चुपचाप सुनता रहा था तो बोले —

'तुम्हे खानदानी समझकर बेटी ब्याही थी। भला आदमी जानकर। पर ऐसे निकलोगे — उसे पटक दोगे ? जैसे उसके लिए कहीं वर नहीं था ? बहुत थे चाहने वाले — वर — उसके लिए ?

उसने पूछा — "दम्मो, सच ! चाहने वाले थे तुम्हारे ?

—"क्या यही पूछने पीछे-पीछे आये थ ? मदिर ? तो सुनो कि, उम्मीदें तो जगानी पड़ती हैं, सभी जगाते हैं। पर मुझे किसी का क्या पता ? — कोई था कि नहीं ?'

हा, दम्मो को सिर्फ अपना पता है, पर उसने क्या पाया उम्मीदे जगाकर ?

यह कभी पहले पूछा था दम्मो से, तो उसने कहा था।

— 'तवे पर पडी रोटी देखी है कभी ? पडी रहे तो कोयला हो जाती है।

उसने पडी रोटी नहीं देखी, सिर्फ दम्मो को देखा है। जिस किसी ने भी उसे जिस चूल्हे मे झोंका है, वह झोंकी जाकर, सा सी किये बिना ही 'जली है। दिन रात मैला कूटा है उसने। फर्श के जक रगडे हैं। धनिया पोनीना पीसा है। अधाधुध पिलकर सतुष्ट भी हुई है। निश्चित भी। करने से अलग उसे फुरसत और के सिए नहीं। फिर क्यों 'िया हवाला दम्मो के बाप ने, उसके चाहने वालो का ?

ऐसी लड़की को किसी ने चाहा होगा ?

उसने फिर पूछा — "कोई मगेतर था तेरा ?

— 'एक था ? —

— 'फिर क्यों नहीं पटाया पिता ने उसे ही ?

— "बिरादरी का नहीं था।

— 'तुम उसे जानती हो ?

— "जानने से कुछ होता ? सभी निर्मोही होते हैं।"

कोई और निर्मोही हों कि न हों, वह जरूर निर्मोही था। निर्मोही था, तभी दम्मो के न चाहने पर भी उसने दम्मो को पाच बच्चों की मा बना दिया था। वह डरती थी। कहती थी कि जुम्मेदारी उठाने की काबलियत उसम नहीं है। — तो चलो अच्छा हुआ कि एक मर ही गया, पर दम्मो रोई थी। उसे तो खुश होना चाहिए था ? — सुनकर बुझ-सी गयी। फिर बोली — "पहले मा बनकर जनो — बच्चा —1 फिर खुश होना।"

एक फिर गर्भ मे ही गिर गया। दम्मो किंतु बच गयी। अब तीन बच्चों को बेजारी मे ही सही, पर सभाल रही है। छोटा यन-कदा उसी के पास रहता है। कहती है — "चौपट हो रहेगा — "

— "और जिन्हे तुम पाल रही हो वो ?

कहती — "मैं तो कुछ भी नहीं कर सकी न, और वक्त बीत गया। मेरे लिए अगला जन्म होगा, अच्छा करने को।"

जब यह कहती है, तब वह एक सास भी नहीं भर सकती। चेहरा झुक जाता है। —

फिर हारे जैसे स्वर मे कहती है — "सब राधावल्लभ पर छोडे हू अब तो। '

उसने एक बार राधा वल्लभ ही के सामने चुपचाप खडे देखा था उसे, पर वह सीढ़िया उतरती — 'शिव-स्थापना" की सीढ़ियों पर आन बैठी थी। फिर लोटा उठाया — जल भरकर शिव जी पर धार बाधकर छोड़ती रही जल।

यों, इस तरह जल छोड़ना उसे भी अच्छा लग रहा था। और वह अपनी भीतरी गाठे भी मानो श्री देव पर खोल रहा था। हालाकि उस समय उसके भीतर प्रगाढ द्वद्व भी था। उसने चार महीने से दफ्तर का किराया नहीं दिया था। बिजली-पानी भी नहीं भरा। कनेक्शन कट गया है। तब भी चला रहा है। हाथ मे नकद अब कम रह गया है। उगाही पर सभावनाए टिकी थीं, पर एजेटों के घपले सामने आने से मन उचाट सा हो गया है। कुछ पोस्ट डेटेड चैक हैं, पर कौन कब भुना देगा ? — और खिन्नता जैसे असाध्य रोग या पुरानी काई जैसी भीतर जम गयी है।

यह दम्मो की आवाज थी कि सहसा वह ख्यालों से हटकर अपने-आप मे आ गया।

— 'सिर पर बोझ है शभो। आप कहोगे,मन को बाधो ! पर मन बेहद बध गया है, इतना कि कोई आवाज नहीं आती अन्दर से। दूसरे काम सारे वैसे-के-वैसे पडे हैं। वह जो अदर था, कि — करो करो। वह अब नहीं है। अब न प्रौढ सस्था जाने को मन करता है, न 'ज्ञान भारती।' मन पहले ही कब करता था उधर का रुख ? हठकता था, क्योंकि छोटे बड़ों मे सबसे ज्यादा उम्र की मैं ही थी। शर्म से सिर डाले-डाले ही सीखा जो सीखा। और जब से 'ज्ञान भारती मे इस्तीफा दिया, अब जाती ही नहीं। अदर धुकधुकी बैठ गयी है पास-फेल की ?"

खामोशी छा गयी है। शायद आचल की आखों पर दिये दम्मो बाहर आ गयी है, आते ही सामने पाया उसने एक मरखना-सा गूदड मे लिपटा आदमी ! 'शिव, शिव ! कहते शिव की सीध मे देख रहा है।

"क्या माग रहे हो ? दम्मो मरखने से पूछ रही है।

वह सिर हिला देता है ! "शिव-शिव ! भगवान से कोई मागा जाता है ?"

दम्मो उससे सिर खपाने खड़ी हो गयी।

बोली—"फिर हम मागेगे कहा जाकर ? कहो ? और बिना मागे भी हम क्या माग नहीं रहे ? अगर आवाज नहीं देंगे, तो सुनेगा कैसे ? — कि सुनकर [illegible] तो साकल खोलने दो

आयेगा ? सुनकर भी न आये — ये उसकी मर्जी।' — कि दर उसका है। पर दम्मो के लिए उसने दर खोल दिया ... कि परीक्षा परिणाम और नियुक्ति-पत्र — दोनों साथ-साथ मिले थे उसे।

मैट्रिन भर्ती हुई थी वह। लेकिन सुपरिंटेंडेंट मिली जो, वह भली महिला थी। अस्पताल की डायटिशन भी वही थी। अत दम्मो को रसोई का कार्य भार सौंप दिया गया। इस काम मे कोई दिक्कत भी पेश नहीं आयी उसे। बाद म वहीं रिहायश भी मिली। पर कर्बला वाला घर छोड़ते समय दम्मो की आखे डबडबा आयी थीं।

अब खाने-पीने, किसी हद तक पहनने तक का भी आराम है। पर दोनों बड़ों को हॉस्टल मे छोड़ना पड़ा है। खर्चा बढ़ गया है। दम्मो पूरी तनखा बचाती है, दोनों बड़ों के लिए। छोटा कभी ही उसके पास रहता है।

एक दिन सिर्फ यह बताने आयी थी कि अस्पताल से दूर क्वार्टर मिल रहा है। उसमे सब रह सकेंगे।

'तुम मैडम से पूछ लो।" उसने सुझाव दिया — बोली — "क्या कहते हो ? खुद मैडम ने ऊपर से ऑर्डर करवाये हैं, कहती हैं — अलग किराया क्यों भरते हो ?"

सोचा — जरूरत मे सबको मा बाप मानकर चलने वाली है दम्मो। उसे मस्का लगाते हुए कहा — "वशीकरण मत्र फूका है, मैडम पर ?

— "छिः, ऐसा कहते हो ? वह एकाएक गभीर हो आती बोली — "कोई मत्र-तत्र से होता है ऐसा कुछ ?

पूछा — 'फिर कैसे होता है ?'

बोली — 'वो कक-खताइया बनवाई थीं न, मैडम को अच्छी लगीं — मुझे थैंक यू वेरी मच भी कहा।

दम्मो अपनी छोटी-छोटी आखे सिपसिपाती है। चश्मा नाक तक उतर आया है, उसे ऊपर ले लेती है।

कहता है — "तो चमचागीरी मे पास हुई, यही सही।"

वह चिढ गयी। — "फिर वही बात ? — बई, स्वामी जी ने नहीं कहा था, सौदबाजी करोगे तो मरोगे ?"

—"तुम मरी हो कोई ? ऐसा करके ?

—"देखो, दिल से इज्जत करोगे न, तब भगवान स्वीकारेगा। कोई भूखा है वह ? मैडम को देखो न, कुछ कम्मी है उसे ? कितने तरह के खाने पकते हैं यहा रोज ! देखो — जैली,

जैम, पुडिंग, खीर —"वह सब गिना गिनाकर बोली —"पर वह कभी देखती भी नहीं चीजों को कभी सिर्फ चाय ले ली।

—"जो हो — मैं अस्पताल मे रहने नहीं आऊंगा।

तब उसने नाम — लाटरी मे लिखा दिया, प्लाट के लिए।

—'बाबू जी! देखा नीचे शनिवार वाली थी। 'दे दो माई-बाप।'

सुनकर रुकने को कहा। सिक्का फेंका। उठने लगी तो उसे रोका — 'ठहरो।

एक रोटी थी रसोई मे — एक धोती निकाली दम्मो की। आकर लेने का इशारा किया तो बोली — "बाबू, नीचे ही आओ, ऊपर चढ़ा नहीं जाता। चोट है पीठ मे —'

कपड़ा उसने कमर मे लपेटा — पलटी तो हठात् — कुचली-सी पीठ। — 'ये कैसे हुआ ?

पूछने पर बोली — अलाव जल रहा था। मैं दखी नहीं — जा गिरी — अब ढपने को नहीं देता कोई — उतारन-सुतारन भी

इसी तरह उघड़ा देखा था दम्मो को सपने मे। अस्पताल के सामने लेटी हुई। निर्वस्त्र।

उसे आता देखकर — अस्पताल का पर्दा खींचकर — कमर के गिर्द ले लिया।

—"इधर क्यों आती हो ?"कितनी बार यही सवाल पूछा है दम्मो से। चुप रहती है। कभी गीली आंखों से — जैसे परिताप बहा डालत कहती हो — "अज्ञान जन्य घोर पाप छुड़ाने हैं

— 'कहीं कोई पाप नहीं तुम पर — दम्मो को जी-जान से समझाना चाहता है। उस पर प्राण छिड़कता है वह, पर वह नहीं मानती — 'मेरा काम पड़ा है, — हैं — तुम्हीं निपटा दो ?"

— काम की स्थिति क्या दम्मो साथ नहीं आयी ?

भयभीत-सा दम्मो को उठाया है — "आओ मेरे साथ।

कहती है — "पहले तुम जाओ! — देखो, — मेरा नाम लिखा है वहा — ?"

फिर उसे वहीं का वहीं खड़ा देखकर वह मुह दूसरी ओर फेर लेती कहती है — "नहीं न, — मेरी बात रखी ही कब थी तुमने ?"

वह क्यों दम्मो की कोई बात नहीं रख सका था ? कितनी सताई-सी रहने लगी थी दम्मो ? आखिरी बार कहा — "देखो अब तो मकान भी बन गया है। दोनों बड़े

अपने अपने घर मे रहने लगे हैं। तुम भी घर मे ही रहो।"

— 'वो घर कोई उनका है ? ससुराल वालों ने दिया है घर उन्हे ।

—'चलो मैंने तुम्हे दिया। आखिर हम दो तो हैं नहीं न ?

— 'कहो, मैंने दो होने का कभी कहा है ?

—'नहीं कहा, पर निर्मोही तो बने रहे हो ? रूखे भी —

—'रूखा हू मैं ?

—'नहीं हो ? — मा के मरने पर जो रोये नहीं ?

काशी दम्मो जानती कि उसके पति की मा सिर्फ मा ही नहीं थीं, घर का स्तभ भी थी मा ! शहतीर थी। और उसी शहतीर को दरका कर मा उन सबके लिए पीछे भूचाल छोड गयी थीं। मा वाहवाही की कितनी लोभी थीं, कि धन मान कम हुआ तो निर्म्य भी बनी। पर कभी भी जाना नहीं, कि जो तख्त दरका गयी है, उसका नतीजा क्या होगा, कि मझधार मे डगमग-डगमग कर रहा है तख्ता अब भी मा बिन

— 'देखो, तुम पिछला सब भूल जाओ। और यह घुमक्कडी भी छोड दो।"

— अच्छा, सोचता हू — इस पर ? —

— 'सोच मैं लूगी ! बस,जिसका देना है, दे दबाकर छुट्टी करो तुम।

— 'लडकों से सलाह करूगा।

—'*बुला भेजा है, दोनों को — मैंने*

अत्यत आश्चर्य !' चाहे सिर से कुछ लाय जाये, दम्मो किसी के आगे पडेगी नहीं। फिर अब ऐसा क्या हुआ है कि बुला भेजा है ? कहा — अब लगता है थक गयी हो ?" कहते-कहते स्वर उसका धीमा हो आया है।

दम्मो का सिर जरा सा टेढा हो गया है। कनखियों से देखी है — पूछती सी — 'इस बात का आज पता चला है तुम्हे ?"

— 'नहीं दम्मो ! थक तो वह भी गया है। *यह कहने मे झिझक होने लगी उसे !* — नहीं झिझक नहीं, थकावट ! नहीं उसे थकावट भी नहीं। थकने से ज्यादा बजारा है उसे। उकताहट और अनमनापन । जिसने सिवा उपरामता के उसमे कुछ नहीं छोडा। बस निष्क्रियता !

दम्मो चुप है। हाड-मास के पिंजर सरीखी अहिल बैठी है।

कहने को उसके पास भी नहीं कुछ। फडफडाये होंठ खुले हैं, पर घुलकर रह गये हैं, भावनाए भीतर लिये-लिये। वह भावनाए *कहीं थीं भी ? तब क्या था ?* — सूखा सूखा सा

कुछ —'

— " देख कर डर आता है, मुझे तो ? "

पूछा — 'कैसा डर ?" वह दमयती को देखने लगा। लटके हुए गाल। छोटा सा माथा, उस पर तीन-चार लकीरें। भीतर को धसी मिचमिची सी आखे।

दमयती यों देखा जाना सह नहीं सकी। बोली — "ऐसे क्यों देखते हो ? मैं पहले भी ऐसी ही थी।'

बिलकुल ऐसी तो नहीं थी दम्मो ? ऐसी नहीं थी।

— 'तुम भूलना मत — पर दोनों से बात मैं ही करूगी।

पहले जैसा दम्मो को देखता रहा वह।

जैसे — यही ठीक है, "स्वीकार है उसे।

दम्मो जानती है, बेटों से बात नहीं हो सकेगी उससे। कतराता ही रहेगा।

बेटे आये तो बिना भूमिका बाधे, बिना कतराये वह बोली — ' धधा समेटने की सलाह दी है मैंने ।"

दोनों ने पूरी गभीरता से सुना, पर कहा कुछ नहीं। दम्मो बात खोलकर बताने लगी, शायद इस उम्मीद मे कि सुनकर कहेंगे — 'ठीक है बाबू जी, छुट्टी करो। चुकाना है किसी का, तो हम बैठे हैं। आप ठाठ से मा के पास रहो।

पर दो मे से एक ने भी ये कहा नहीं। अलबत्ता मा को, पहली बार सूझ-बूझ रखने वाली मा बताया।

बड़ा बोला — 'घाटे वाले धधे मे रखा भी क्या है ?"

मझले ने राय दी — 'छोटा भी जमकर रहना सीखेगा। जिन्दगी बन जायेगी।"

बड़े ने जोड़ा — "और नहीं तो, धोबी वाले कुत्ते की तरह का हिसाब तो है ही —"

मझला बोला — अपना फर्ज जान जायेगा, बूढ़े मा बाप के प्रति। जबकि अब बीवी भी है —।

दोनों की उथली बाते दम्मो को गड रही हैं, यह दम्मो पर चढ़ते-उतरते रग से जान लिया था उसने। तब दम्मो ने चेहरे से सारे रगों को उतार फेंकते कहा — "मैंने सुन लिया है। अपना वक्त बेकार यहा न गवाओ — समझदार बेटो ! जाओ, काम सभालो।"

अब दम्मो का साथ पाकर — भीतर ही-भीतर तृप्ति हो रही है। दम्मो भी इन दिनों बिस्तर मे दुबकी रहती है। एक दिन दुबके-दुबके ही निवृत्ति लेने की बात छेड़ दी।

कहा — "मकान रेहन रखकर चुका सकते हैं कर्जा ?"

बोला — 'रेहन न भी रखे, सरकार को किस्तों से मतलब ?

— "तो छोडो, किस्ते तनखा से ही भुगतने दो। ठेकेदार का भी देना है। — भाई, जामिन है न ?

भाई की बात उसने पहली बार ही सुनी थी। अचभे से भर गया। दम्मो ने ही [illegible] लिया —"वही बिल्डिंग और नौकरी में सिफारिश करने वाला था। बाबू बताते हैं — दूर के नाते से है भाई —"

सोचने लगा, दुनिया मे कहां कहां से आकर बेगाने अपने बन जाते हैं।

फिर अचानक कह उठी — 'ये घर, वैसे मुझे पसद तो नहीं, पर घर रहने के लिए तो चाहिए। इसे मैं छोड नहीं सकती। — तुम हो, छोटा है —

कुछ रुककर कहा — अच्छा, तुम छोटे को नहीं कह सकते ?

— 'क्या ?"

— 'छोडो, कहना क्या ? — तुम उसे लिवा ही लाओ।"

फिर उसी सप्ताह दरियाफ्त किया — 'गये थे ? —

सिर हिला दिया तो पूछा — "क्या कहता था ?"

— 'कहता था — आयेगा। —"

उसे याद आया, छोटे ने कहा था — 'मा के साथ मा जैसा बनना पड़ेगा ?"

— 'क्या मतलब ?"

वह बोला नहीं, तो समझ म आया। मा के सामने वह सिगरेट भी नहीं पी सकेगा।

— "पर यहा भी तो झगडे हैं बेटे ! तुम परायी लडकी को झगडों म [illegible] ?"

— "पर उस तरह रहना भी मुश्किल है बाबू जी। अब रहने में न अलग ?"

— "मैं दूसरी झगडों की वजह से था। फिर मैं अकेला था —"

— "कभी मैं भी आ जाता था।"

— "पर कितना अर्सा — ?"

बाबू तब शरबत से अदा था, फिर शरबत [illegible] उम्र [illegible]।
[illegible] में भी [illegible] जुडी जुडी [illegible] देख लेना [illegible]।

[illegible] — "तो बाबू मैं ?"

"अपने का [illegible] है बाबू जी, पर [illegible] आप सिर की जिम्मेदारी में [illegible]

हो बैठा मैं, तो ? — मैं ढीला नहीं पड़ना चाहता ?

सुनकर दम्मा बोली — 'उसने कहा, और तुमने मान लिया ? — जुम्मन्नार वाक्ई बहुत है वह।

दम्मो से सहमत होता सा चुप गया था वह। फिर सोचा — हम क्या ? कहना था सो कह दिया। आये या कि न आये ? —

अगली सास में मुंह से निकला — आयेगा ही, नहीं तो कहां जायेगा ? —

वह खुद कितना थक चुका था – भटक-भटककर ! भटकन ही फिर राह दे देता है। और इंसान खप जाता है, जहां भी सींग समाय ! खोजी तो बस कोई-कोई ही होता है !

एकाएक दम्मा का चेहरा मन में जग जाता है। दम्मा पास पड़ी धीमी सांस भर रही थी। वह दम्मो के पास सरक गया। मन हुआ, दम्मो को अंकमें ले ले ! सिर पैरों पर धर दे। देखो कि पानी का चश्मा दम्मो ने खोजा। पर इस घर से उसे लगाव ही नहीं। चश्मा शायद असाध्य रोगियों के लिए होता है ?

पर इसी घर के नीचे जो बगीचा लगाया था उसने, उससे उसे लगाव है। अक्सर माली को बुलवा कर काट छाट कराती है और पौधे कैसे जा रहे हैं, ये पूछती है। इस बार बरगद के छोटे रह जाने पर चिंता व्यक्त की थी — 'देखो, दो साल में सभी ऊपर तक उसर आये हैं पौधे, फिर ये बरगद क्यों पीछे रह गया ? —

— "ये — बट ?' माली ने इंगित करते कहा।

— "सहज-सहज उठता है बट ? —

— — पर — कितना सहज — ?

माली अक्खड़ था, दम्मा की असहजता पर आंख फाड़ — दांत उघाड़ बैठा — आपने बरगद लगवाया ही क्यों ?

समझकर दम्मो बोली — "मेरे काम नहीं आयेगा, यही न ? — पर सबके काम तो आयेगा ?"

सबमें कभी छोटे की पत्नी और होने वाला उसका बच्चा भी तो शामिल नहीं था ? नितंबों पर भार न डाल पाने वाली — खड़खड़ चावल बीनती हुई छोटे की बहू आंखों के आगे आ गयी।

— "अब तुम छोटे को रास्ते पर लाना। उसके बच्चे की ठीक से देखभाल करना। इस तरह परिवार के लिए खुद को उत्सर्ग करना — तुम भी —

अचभे म देखा दम्मो को — । 'क्या इस उम्र मे नय सिरे से सीखेगा वह ये सब ?'

दम्मो कुछ याद करके बोली — 'कैसे दोनों बेटों ने तेवर बदल लिये थ । उस वक्त अगर भगवान लाज न रखता, तो — लेनदार मकान कब्जे म कर लेत । पर भगवान जब लाज रखने पर आता है, तो मौके की राह नहीं देखता । ऐन वक्त पर झट ढूढ लेता है कोई उत्सर्गी । वरना हमारा कौन होता था वह इजीनियर । दूर का कोई न ? — पर आज तो अपना नजदीकी भी वक्त पर काम आता है कोई । बताओ कोई पैर छुएगा नहीं, ऐसे म भगवान के ?'

दम्मो उसी के आगे झुककर उसके पैर छूने लगी ।

— 'ये क्या करती हो ?' इस झिझक भरे अपने ही प्रश्न की बहुत ही मध्यम सी आवाज उसके कानों मे उठी, और वहीं डूब भी गयी । फिर बहुत ही एहतियात और बारीकी से उसने अपने पैर भी हटा लिये ।

यह क्या हुआ ? दम्मो पलक बिना झपकाये देखती रही ।

हा, क्या हुआ ? वह भी नहीं जान पाया । पर कुछ था कि उसका इस घर से लगाव जाता रहा था । इस घर मे उसका कुछ नहीं अब । कैसे एक क्षण मे यह घर किसी आत्मोत्सर्गी का हो गया है ? कौन है वह ? कौन एकएक ईंट जोड़ता है ? कौन गढता है ?

बात ब्रह्मज्ञान का रुख ले बैठी ।

दम्मो कहती— कभी कभी तो भगवान मायाजाल रचा देते हैं । हमे बताने के लिए कि तुम भी रचना सीखो । और गढो । और हम गढते हैं । अपने गढ़े हुए मे सुधार भी करते हैं । कितने परिवर्तन भी । वह भी इसलिए परिवर्तन करता है कि हम जान जाये कि अनत परिवर्तन हैं ससार म । और वह पुन बारबार गढता है । और फिर तोड देता है । हममें से ओछापन भगाने के लिए । छोटापन ।

किंतु दम्मो की कही हुई कोई बात मेरीअरुचि को मुझमे से भगाने मे समर्थ न हो सकी ।

दम्मो की मजूर छुट्टिया अब खत्म हो चुकी हैं । दम्मो छुट्टी बढाने की सोच रही थी, तभी ट्रासफर ऑर्डर आ गये । स्टाफ के काफी सदस्य बडे अस्पताल के लिए चुन लिए गये हैं, उसी में दम्मो भी चुनी गयी । ट्रासफर ऑर्डर उसने भी पढा । शायद — अस्पताल की गाडी लेने आयेगी । अत पहले से तैयार थी दम्मो । गाडी आने पर सीढिया उतर गयी ।

अपना बैग और झोला खिड़की मे भीतर फेंक दिया। हैंडल पकडकर घुमाया, और ऊपर हाथ उठाया। मेटाडोर तब तक झटक से भागी, और बगीचे का चक्कर काटती फर्राटे से सड़क पर आन पहुची और साथ ही दम्मो की चीख — 'रान्डम। फिर चीख घुट गयी।

सभी लोग अपनी अपनी बालकनियों पर आन खड़े हुए। बच्चे और मर्द सीढ़िया उतर आये। सड़क भीड और कोलाहल! बुत बना खड़ा था वह।

'ये कैसे हो गया ?'

इसीलिए तो नहीं, कि वह पैर हटा बैठा था ? नहीं,दम्मो ऐसी नहीं थी। वह ऐसा कर ही नहीं सकती थी। वह तो उलटा प्रार्थना करती थी — अकाल मृत्यु हरणम् सर्वव्याधि

फिर, सर्वाधार ने उसे यह दिया ? — वह कहती थी– सर्वाधार पूर्ण पाप क्षय कर देता है। हमे सपूर्ण बनाने के लिए।

यही है, यही सपूर्ण स्थिति ?

जब जब सपने मे दिख जाती है दम्मो —

वह पूछता है और बार बार जानना चाहता है — आयी क्या है ? — वह क्यों अभी भी भटक रही है ?

इस बात का जवाब दम्मो ने आज ही दिया — "देखो, ये छोटा है न — बहुत छोटा बन कर भागा आता है मेरे आचल मे। तीन-चार बरस के छोटे बच्चे जैसा मैं उसे चुमकारती हू दुलराती हू — पर खाली हाथ कोई मा अपने जाये को दुलार सकती है ?'

□□